

वर्ष ७ : अंक २

निगमामृत

(ऋग्वेदीय श्रीसूक्त)

५

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्ये,
अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥

चन्द से भी अधिक अमन्द द्युति देती मोद
राशि से सुयश की प्रकाशित उदारा हैं,
लोक में ललामा अभिरामा इन्दिरा की सदा
सेवा में निरत देवता हैं, देवदारा हैं।
लेता हूँ शरण उन पद्मा की जिन्होंने निज
कर-अरविन्द में पयोज मंजु धारा है,
सदन हमारे से अलक्ष्मी की अमा हो दूर
वरणीय मेरा रमा, चरण तुम्हारा है ॥

६

आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो
वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ विल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु
मायाऽऽन्तरा याश्च वाह्या अलक्ष्मीः ॥

रवि के समान छविपुञ्जसे भरी हे रमे !
तप से तुम्हारे वन्य पादप प्रकट हैं,
कमले ! तुम्हारे कर-कञ्ज से प्रसूत हुआ
सुन्दर सुरभि बिल्व-वृक्ष अविकट है।
उसके सुफल उस माया का निरास करें
अन्तर में वास करती जो सकपट है,
दूर करें त्यों ही उस दारुण दरिद्रता को
बाहर जो रहती मचाये खटपट है ॥





श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

प्रवर्तक

ब्रह्मलीन श्री जुगलकिशोर बिरला

अवैतनिक

● सम्पादक-मण्डल

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

डा० विद्यानिवास मिश्र

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

डॉ० भगवान् सहाय पचौरी

● सम्पादक

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

गोविन्द नरहरि वैजापुरकर

संख्या ●

वर्ष : ७, अङ्क : ३

अक्तूबर, १९७१

श्रीकृष्ण-संवत् : ५०७१

शुल्क ●

वार्षिक : ७ रु०

आजीवन : १५१ रु०

प्रबन्ध—सम्पादक

देवधर शर्मा

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

'श्रीकृष्ण-सन्देश'के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखों द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिक, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोध जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

नियम : उद्देश्यमें कथित विषयोंसे संबद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छाँट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें न छापनेका संपूर्ण अधिकार सम्पादकका है। अस्वीकृत लेख बिना माँगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

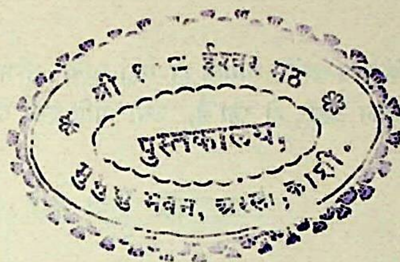
लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक ही पृष्ठपर बायें हाशिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख 'सम्पादक' 'श्रीकृष्ण-सन्देश' रू० नं० ६, कैलगढ़ कालोनी, जगतगंज, वाराणसीके पतेपर भेजें।

• 'श्रीकृष्ण-सन्देश' अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होता है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एकबार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चंदेमें उनके जीवन भर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मिलता रहेगा।

ग्राहकको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनिआर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

• विज्ञापन : इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता :
व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा



श्रीकृष्ण-जन्मस्थान

प्रत्यक्षदर्शियोंके उद्गार

(अक्तूबर १९७१)

☆

परम सौभाग्यसे आज यहाँ आ गया। इस पुण्य-स्थानपर कार्यकर्ताओंकी नम्रता देखकर चित्त गद्गद-सा हो गया। भगवत्-प्रेरणासे सद्गृहस्थोंके हृदयोंमें जो शुभ-भावनाएँ यहाँके उत्थानके लिए दिखायी पड़ती हैं, वे बड़े ही सौभाग्यकी सूचक हैं।

स्वामी प्रकाशानन्द सरस्वती
हरिधाम-बिठूर (ब्रह्मावर्त)

× × ×

आज दिनांक ७-६-'७१ को मैंने कृष्ण-जन्मभूमिमें आकर यहाँकी व्यवस्था देखी। इस धार्मिक तथा ऐतिहासिक तीर्थस्थानकी सुरक्षाका अनुपम कार्य सर्वथा सराहनीय है। भगवान् कृष्ण जैसे महान् तपस्वीको जन्मस्थलीको मैं श्रद्धावनत हो शत-शत प्रणाम करता हूँ।

गोपीनाथ दीक्षित
राज्यमन्त्री, उत्तर प्रदेश।

× × ×

मैं मेरी पूज्य बड़ी माँ (श्रीमती सुनीतादेवी तापड़िया) एवं माँ (श्रीमती मोदिनीदेवी तापड़िया) एवं बजरंगलाल मोदी, दीदी माँ (श्रीमती मुखर्जी) व सीताबाईके साथ यहाँ दर्शनार्थ आयी। दर्शनसे मन बहुत ही प्रसन्न हुआ।

श्रीमती कृष्णादेवी मोहता
वी २६, ग्रेटर कैलाश
नयी दिल्ली।

× × ×

जीवनके पुण्य-क्षणोंमें भाग्यसे ही यहाँ आना सम्भव हो सका। जिस प्रकार भगवान् कृष्णके जन्मस्थलका उद्धार हो रहा है, उसी भाँति इस देशका भी जीर्णोद्धार होगा, इसका विश्वास है।

डा० रामकुमार वर्मा
अध्यक्ष : शासी-मण्डल
हिन्दी-ग्रन्थ-एकादमी,
महानगर, लखनऊ।

× × ×

पुण्य-स्थानको देखकर तथा मन्दिरमें दर्शन करके बहुत प्रसन्नता हुई।

विष्णुप्रसाद पोद्दार
बी १७, ग्रेटर कैलाश
नयी दिल्ली।

× × ×

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका दर्शनकर मुझे हार्दिक सन्तोष और प्रसन्नता हुई। स्थान दिन-प्रतिदिन विकसित व समृद्ध हो रहा है। मेरी कामना है कि यह शीघ्र ही अत्यंत मनोरम, दर्शनीय धर्मस्थल बने।

महावीरप्रसाद जैन
सिटी मजिस्ट्रेट
मथुरा।

× × ×

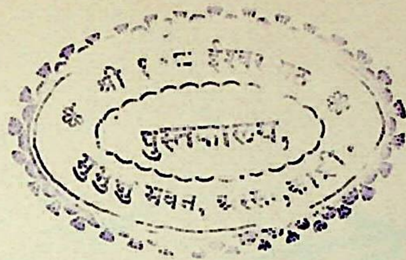
इन धर्म-स्मृतियोंके इस प्रकारके सशक्त स्तम्भ-निर्माताओंको शत-शत वन्दन! यही मनुष्यको धार्मिक प्रेरणा मिलती है और सत्-जीवनके लिए अनुकरण। यहाँके एक-एक प्रस्तर-खण्डसे भारतीय संस्कृतिकी झलकियाँ दिखायी देती हैं।

मोहन भाटिया
धानाज्, नेपीयन सी रोड
बम्बई—६

गोपाष्टमी का सन्देश

गोवध भारतका कलंक है वह मिटकर रहे

श्रीकृष्ण-सन्देश



मासिक व्रत, पर्व एवं महोत्सव

[संवत् २०२८ कार्तिक शुक्ल प्रतिपद २० अक्तूबर '७१ से मार्ग-शीर्ष कृष्ण अमावास्या, १७ नवम्बर '७१ तक]

अक्तूबर : १९७१ ई०

तिथि	वार	दिनाङ्क	व्रत-पर्व
१	बुध	२०	गोवर्धनपूजा, अन्नकूट।
२	गुरु	२१	यमद्वितीया, भैयादूज।
४	शनि	२३	वैनायकी गणेश ४र्थी व्रत।
६	सोम	२५	रविषष्ठीव्रत (डाला छठ)।
८	बुध	२७	गोपाष्टमी।
९	गुरु	२८	अक्षयनवमी (कूष्माण्डनवमी)। कृतयुगादि। मथुरा-प्रदक्षिणा।
११	शनि	३०	प्रबोधिनी एकादशी, सबके लिए।
१२	रवि	३१	प्रदोष-व्रत। तुलसी-विवाह।

नवम्बर : १९७१ ई०

तिथि	वार	दिनाङ्क	व्रत-पर्व
१४	सोम	१	वैकुण्ठ चतुर्दशी।
१५	मंगल	२	कार्तिकी पूर्णिमा, व्रतके लिए। चातुर्मास्य व्रत समाप्ति। गुरुनानक जयन्ती।
४	शनि	६	सङ्कष्टी गणेश ४र्थी व्रत।
८	बुध	१०	महाभैरवाष्टमी।
११	शनि	१३	उत्पन्ना एकादशीव्रत, सबके लिए।
१२	रवि	१४	नेहरू-जयन्ती (बाल-दिवस)।
१३	सोम	१५	प्रदोष-व्रत।
१४	मंगल	१६	वृश्चिक संक्रान्ति मास शिवरात्रि व्रत।
३०	बुध	१७	वंग मार्गशीर्ष मासारंभ। दर्शश्राद्ध।

●

अनुक्रम

●



श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

वर्ष : ७] मथुरा, अक्तूबर १९७१ [अङ्क : २

मुक्त कौन ?

जो सबका मित्र है, समस्त प्रतिकूलताओंको सहर्ष सह लेता है, मनके निग्रहमें तत्पर रहता है, जितेन्द्रिय, भय और क्रोधसे रहित तथा आत्मवान् होता है, वह मनुष्य बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो नियम-परायण और पवित्र रहकर सब प्राणियोंके प्रति अपने जैसा ही बर्ताव करता है, जिसके भीतर सम्मान पानेकी इच्छा नहीं है तथा जो अभिमानसे दूर रहता है, वह सर्वथा मुक्त ही है। जो जीवन-मरण, सुख-दुःख, लाभ-हानि तथा प्रिय-अप्रिय आदि द्वन्द्वोंको समभावसे देखता है अथवा उनकी प्राप्तिमें समान भाव रखता है, वह मुक्त हो जाता है।

जो न धर्ममें आसक्त है, न अधर्ममें, जो पूर्वसंचित कर्मोंका त्याग कर चुका है; वासनाओंका क्षय होनेसे जिसका चित्त शान्त हो गया है, तथा जिसके ऊपर सुख-द्वन्द्वोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता; वह मोक्षलाभ करता है। जो किसी कर्मके प्रति कर्तापनका अभिमान नहीं रखता, जिसके मनमें कोई आकांक्षा या कामना नहीं रहती; जो इस जगत्को अश्वत्थके सदृश अस्थिर—कल तक न टिक सकनेवाला मानता है तथा जो सदा इसे जन्म, मृत्यु एवं जरासे ग्रस्त जानता है, जिसकी बुद्धि वैराग्यमें लगी रहती है तथा जो निरन्तर अपने दोषोंपर दृष्टि रखता है वह शीघ्र ही अपने बन्धनका नाश कर लेता है।

जो आत्माको गन्ध, रस, स्पर्श, शब्द, परिग्रह तथा रूपसे रहित एवम् अज्ञेय समझता है, वह मुक्त हो जाता है। जिसकी दृष्टिमें आत्मा पाञ्चभौतिक गुणोंसे शून्य निराकार, कारण-

रहित तथा निर्गुण होता हुआ भी मायाके सम्बन्धसे गुणोंका भोक्ता है; वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो बुद्धिसे विचार करके शारीरिक और मानसिक समस्त संकल्पोंका त्याग कर देता है, वह बिना ईंधनकी आगके समान धीरे-धीरे शान्तिको प्राप्त हो जाता है। जो सब प्रकारके संस्कारोंसे रहित तथा द्वन्द्व और परिग्रहसे शून्य हो गया है और जो तपस्या द्वारा इन्द्रिय-समूहको अपने वशमें करके अनासक्त भावसे विचरता है, वह मुक्त ही है। जो सब प्रकारके संस्कारों या वासनाओंसे ऊपर उठ गया है, वह मनुष्य शान्त, अचल, नित्य अविनाशी एवं सनातन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है।



ज्ञान-दीप

मुदिताँ मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

जोग अगिनि करि प्रकट तब, कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत, ममता मल जरि जाइ॥
तब बिग्यान स्वरूपिनी, बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ, समता दिअटि बनाइ॥
तीन अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास ते काढि।
मूल तुरीय सवाँरि पुनि, बाती करै सुगाढि॥
एहि बिधि लैसे दीप, तेजरासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब॥

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भवमूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पा उँजियारा। उर गृहँ बैठि ग्रन्थि निरुआरा॥
छोरन ग्रन्थि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई॥

—श्री गोस्वामी तुलसीदास



ब्रज-संस्कृतिके भूले-बिसरे उपजीव्य-आधार :

•बाबा श्री गौरदास•

सुश्री कुमारी उषा खेमका, एम० ए०

★

कठोपनिषद्में (१.२.२) यमराजने नचिकेताको सम्बुद्ध करते हुए कहा है :

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥

अर्थात् "श्रेय' और प्रेय' दोनों ही मनुष्यके समक्ष होते हैं। दोनोंके स्वरूपको भलीभाँति पहचानकर बुद्धिमान् पृथक्-पृथक् समझ लेता है। श्रेष्ठबुद्धि परमकल्याणको ही भोगकी अपेक्षा-श्रेष्ठ समझकर ग्रहण करता है, जब कि मन्दबुद्धि मनुष्य लौकिक योग-क्षेमकी इच्छासे भोगोंके साधनरूप प्रेयको ही अपनाता है।"

वंगभूमिमें आजसे ७५-७६ वर्ष पूर्व उत्पन्न बाबा गौरदास भी उन्हीं बुद्धिमान् मनुष्योंमेंसे एक थे, जो श्रेयस्कर मार्गके पथिक बने। वंगभूमिकी व्रजपर सदैव बड़ी कृपा रही है। समय-समयपर वंगालने व्रजभूमिपर ऐसी महान् आत्माओंको उतार भेजा है, जो श्रेयस्के दिव्य सन्देशसे ओतप्रोत मानवमात्रको निःस्वार्थ सेवामें ही आजन्म लीन रहे। महाप्रभु चैतन्यके प्रमुख पार्षदरत्न श्री श्रीसनातन किसी समय व्रजके नन्दग्राम धामके बाहर जंगलमें एक कुटियामें निवास करते भगवन्नाम-जपमें लीन रहते और प्रभुके गुणगानका दिव्य प्रसार करते थे। कालान्तरमें सनातनजीकी यह कुटी अनेक सन्तोंके आकर्षणका केन्द्र बन गयी।

बाबा गौरदास भी भगवत्प्रेरणासे वंगभूमिको छोड़कर व्रज आये और सनातनजीकी कुटीके पास रहने लगे। श्री राधा-नामका सतत उच्चारण करना और उदरनिमित्त दो मधुकरी पा लेना ही उनकी दिनचर्या थी। उनका ध्यान सोते-जागते, उठते-बैठते अहर्निशि भगवान् श्यामसुन्दरकी नित्यप्रिया रासरासेश्वरी वृषभानुकुमारी श्री राधाके चरणोंमें लगा रहता। मनमें एक उत्कट तड़प होती कि कैसे श्री राधाके दर्शन होंगे। तन-मन आकुल-व्याकुल रहता था।

कुछ दिनोंके अनन्तर उनके हृदयमें ऐसी इच्छा जगी कि नन्दमहलमें विराजमान नन्दलाला श्रीकृष्णदेवकी फूलोंकी सेवा की जाय। वे नित्य प्रातःकाल नन्दबाबाके बगीचेसे फूलोंका चयन कर लाते और बड़ी रुचिपूर्वक माला गूँथते। इस कार्यमें उनका शरीर पुलकायमान हो उठता। यही क्रम प्रायः ५-६ वर्ष पर्यन्त चलता रहा। माला-गुम्फन और

अर्पण तथा भावभीने नेत्रोंसे नित्य नन्दलालाके दर्शन बाबाका नित्यकर्म बन गया था। नेत्रोंसे अविरल अश्रु निर्झरित होते रहते। वे मन ही मन प्रार्थना किया करते कि 'लालजी! एक बार अपनी दिव्य झाँकीका दर्शन कराकर मुझे कृतार्थ कर दो। बड़ी आशा लेकर आया हूँ।' किन्तु वे नटखट नटनागर, रूपसुधा-सागर ऐसे सहज थोड़े ही पसीजनेवाले हैं!

एक दिन बाबाजीके हृदयमें प्रणय-अभिमानका उदय हुआ। मनमें विचार किया कि चलें बरसाने। लाला तो कुछ सुनता ही नहीं। अपनी अलौकिक झाँकीका दर्शन कराता ही नहीं। वह वृषभानुनन्दिनी दयार्द्रचित्त अवश्य कृपा करेंगी। उन्होंने कुछ वर्ष पूर्वकी श्री किशोरीजीकी दयालुताकी प्रत्यक्ष हुई एक घटना सुन रखी थी।

संसारके व्यामोहमें लिप्त कोई एक संभ्रान्त बाबू अपनी स्त्रीका देहान्त हो जानेपर पागलकी भाँति घरसे निकल पड़े और वे पागलोंकी-सी चर्या करते हुए बरसानेकी गहवर-वनकी घाटीमें पहुँच गये। उनकी स्त्रीका नाम 'किशोरी' था। वे गहवर-वनकी किसी दिव्यलताके नीचे बैठकर 'हाय किशोरी!' पुकार उठे। पहली पुकारपर ही श्रीराजराजेश्वरी वृषभानुनन्दिनी ने श्री ललिताजीकी ओर संकेतमयी दृष्टिसे देखा। इतनेमें ही वे पुनः पुकार उठे: 'हाय किशोरी, कहाँ चली गयी!' तब श्री किशोरीजीने कहा: 'हे प्राणाराध्या सखी ललिते! ऐ कौन मेरो नाम लें-लेंके आर्त ह्वै कै टेर रह्यो है?' श्रीललिताजी बोलीं: 'हे प्राणाराध्या स्वामिनी! जे आपकौ नाम नांय ले रह्यों। राजी पत्नीको नाम किशोरी है। वासौं जाके विछोह है गयौ है, वाय पुकारै है।' इसी बीच वे तीसरी बार पुकार उठे: 'हाय! किशोरी!' तब तो श्री राधाजी अत्यन्त उत्कण्ठित हृदयसे गद्‌गद शब्दोंमें श्री ललिताजीसे बोलीं: 'ललिते! नाम तो मेरौ हैं। तू अबई जा और बाय जैसो होय, मेरे सन्निकट ला।' स्वामिनीजीकी करुणा-वर्षा करनेकी अद्‌भुत व्याकुलता देख ललिताजी उस महानुभावके समीप पहुँचीं और बोलीं: 'हे मोहान्ध जीव! तेरे भाग्य खुल गये। चल, तोय हमारी स्वामिनीजी बुलावै हैं।' वे उनके पीछे-पीछे चल पड़े। श्री किशोरीजीने उन्हें अपना दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। ये ही बाबू संत 'किशोरी अली' नामसे विख्यात हुए।

हमारे चरित्रनायक बाबा गौरदासजीने करुणामयीकी यह अहैतुकी कृपा सुन रखी थी। अतः उसी दिन सायं गोधूली-वेलामें बरसाना अभिमुख हो गये। ध्यानमग्न अवस्थामें वे कुछ ही आगे बढ़े होंगे कि गउओं एवं बालसखाओंके समूहमें से एक बड़ा ही अलौकिक, श्यामवर्णीय बालक घुंघराली अलकावली मुखमण्डलपर लहराते हुए पीताम्बर धारण किये उनके समीप आया और अत्यन्त मृदुवाणीमें बोला: 'बाबा! तू कहाँ जावै हैं?' बाबा बोले: 'लाला! हम बरसाने जावै हैं।' बालक बोला: 'नाय बाबा! म्हांपै मत जा।' बाबा: 'अरे लाला! जाने दे, जिद्द नायँ करे।' तभी बालक अपनी दोनों भुजाओंको फैलाकर रोकनेका उपक्रम करने लगा और बोला: 'बाबा! फिर हमें फूलनकी माला कौन पहनावैगो?' इतना सुनते ही बाबा संज्ञाविहीन हो गये और उस बालकके श्रीचरणोंसे लिपटना चाहा। देखा—न तो वह बालक, न गउएँ एवं न ग्वाल-बाल! बाबा विरहमें पागल हो उठे एवं उस रजमें लोट-पोट होने लगे। वे विरहावस्थासे आप्लावित नन्दग्रामकी ओर अग्रसर होने लगे। तभी उसी दिन

प्यारी हरि-मूरति

श्री वियोगी हरि

नित-नित नव रसरीति प्रीति, कछु, कैसे जाति कही ;
नैन बैन बिनुमोल गये बिकि, नहिं परतीति रही ।

मधुर परम प्यारी हरि-मूरति अँखियनि आय बसी ;
मंजु-मालती-माल मनौं दृग-पुतरिन बिलसि लसी ।

कैधौं कल कमनीय कलाधर-कला बिमल उनई ;
किधौं प्रभात-कमल-कलियन पै कोमल किरिन छई ।

कैधौं रूप-रासि-रस-रेखा चित्रित चखनि खची ;
किधौं ललित - लावण्य - लतावृत कांति-कुटीर रची ।

कबहुँ अमित-आनंद-बेलि हिय केलि-कुञ्ज लपटी ;
कबहुँ रहस-कृत रंगभूमि पै नाचति नेह-नटी ।

कबहूँ निर्झर झरत दृगन तैं, भरत सुरति-सरसी ;
बिगसत भाव-कुञ्ज, मन-मधुकर गुंजत मधु-दरसी ।

अति अगाध प्रेमामृत-नीरधि, लगन-लहर लहरी ;
'हरि' मन-मीन लीन तहँईं नित बिलसत छबि छहरी ।

लालाने अपने पुजारीसे स्वप्नमें कहा : 'बाबा गौरदासको हमारी फूल-सेवासे कभी वंचित न करना !'

बाबा गौरदासजी आजीवन दोनों लालाओंकी फूल-सेवा करके अन्तमें उनके दिव्य धामको चले गये ।

व्रजके संतोंका कहाँतक गुणगान करें ? श्री व्रजराज-राजेश्वरीकी पावन लीलाभूमिमें इन सन्तोंकी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनेक अद्भुत लीलाएँ सुननेमें आती हैं। प्राचीन ग्रन्थ इन लीला-वर्णनोंसे भरे पड़े हैं ।

धन्य है नन्दलाल, धन्य वह नन्दग्राम, जहाँ उस परम नटखट श्यामसुन्दरकी अनेक दर्शन-लीलाएँ आज भी देखनेको मिल जाती हैं। किन्तु उनको देखनेके लिए बाबा गौरदासकी-सी भक्तिपूरित एकनिष्ठ श्रेय-प्रेयविवेचक आँखें चाहिए। यह व्रजभूमि भावभूमि है, जिसमें एकबार जो आया, वह इसीका हो गया। परमवैष्णव रसखानने अपनी आँखोंसे परखकर ही तो कहा था :

मानुस हौं तो वही रसखान,
बसौं नित गोकुल गांव के ग्वारन ।

विचारोत्तेजक ललित-निबन्ध

दशकन्धरकी पाती

डॉ० भगवान सहाय पचौरी
पी० एच० डी०

★

त्रिकूट पर्वतके सर्वोच्च शिखरसे मैं रावण बोल रहा हूँ—लंकाधिपति रावण, दशकन्धर, दशशीश, असुराधिप रावण ! बोल क्या रहा हूँ, बोलनेको विवश हो रहा हूँ आज, जब कि भगवान् रामके त्रिकालजयी, अमोघ वाणोंकी नोंककी आगसे मेरे शीशोंको जले हुए युग बीत गये। आप आश्चर्य न करें कि फिर भी मैं बोल रहा हूँ। मैं आज बोलूँगा और अवश्य बोलूँगा कि मेरे बोलनेको कभी तो अवसर दो। कभी तो उस वाणीको खोलने दो, जिसपर एक दिन वेदोंकी ऋचाएँ नर्तन करती थीं; जिसने स्तोत्रपाठोंसे कैलासवासी भगवान् शंकरके आसनको डुला दिया था; जिसने अनेकधा अपने हाथोंसे अपने शीशोंको काट-काटकर शिवके चरणोंपर चढ़ाया था; जिसकी भ्रकुटि तनते ही सुन-नर-मुनि-गन्धर्व-किन्नर-वासुकि तक प्रकम्पित हो उठते थे ! जिसके आदेशकी अवहेलना करनेकी जुरंत इन्द्र, वायु, वरुण, सूर्य, शशि भी न कर सकते थे; जिसके उद्धत-उद्दण्ड औद्धत्यने स्वयं असुरारी भगवान् रामको अपने द्वारपर बुलाकर ऐहिक जीवनसे मुक्ति माँगनेका दुःसाहस किया था !

मैं असुराधिप हूँ सही, परन्तु सरस्वती का वरद पुत्र भी तो हूँ ! विज्ञानकी सर्वोच्च भौतिक उपलब्धियोंके साथ मेरा भौतिक अस्तित्व आज न सही, परन्तु मेरा सूक्ष्म अस्तित्व अग-जगमें परिव्याप्त होकर आपसे कुछ कहनेको मचल उठा है। आप बौद्धिक हैं, सभ्य और ज्ञानगरिम व्यक्तित्वसे आमंडित हैं ! आप प्रोद्बुद्ध हैं, विज्ञान-निष्णात ! आपका गौरव आज चन्द्रतलतक पहुँच चुका है। कल मंगल, शुक्रादि सुदूरस्थ मण्डलों पर आपके दर्पकी अहंस्फीत पताका फहरेगी ही। और उसके अनन्तर ? उसके अनन्तर नियतिके क्रूर हाथों वही नाटक होना सुनिश्चित है, जो मैंने युगों पूर्व धरतीपर खेला था। भौतिकतापर अध्यात्मकी विजय-ध्वजा लहरायेगी। कोई राम आयेगा, धर्मसंस्थापनार्थाय उसका अवतार होगा और वही होगा, जो मेरे दर्पाहंकारका हुआ। तो फिर मैं और आप सहधर्मी—सहकर्मी हुए, मैं रावण और आप रावणधर्मी। मुझमें और आपमें भेद क्या, अन्तर क्या ? ऐसी दशामें जब ये सात्त्विक क्षण मुझे

मिले हैं तो चन्द बातें आपसे अपनी भाषामें कर लेनेकी अनुमति दें। मै कुछ कहूँ और कदाचित् आप संसारी इस प्रेतकी बातोंको सोचें-विचारें, अपने-अपने अन्तस्तलको टटोलें कि आप किस पदपर हैं—मेरे असुर-पथपर या रामके मर्यादा-पथपर? आप तेवर न बदलें! सत्य सत्य है। आपने अनुमति दी है तो सुनें।

प्रतिवर्ष आप दशहराके पर्वको भारी हर्षोल्लासके वातावरणमें मनाते हैं, और अभी-अभी २९ सितम्बरको देशभर धूमधामसे उसे मनाया। युगोंसे यही होता आया है। नगर-नगर, गाँव-गाँव घर-घर रामलीलाओंके आयोजन आप करते हैं राम और राम-परिकरके प्रतीकों द्वारा रामकथा कहते, गाते और सुनते-सुनाते हैं। मेरे और मेरे परिवारके गगनचुम्बी कागज-बाँसके पुतले बनाते हैं। मैदानोंमें गाँवके गाँव, नगरके नगर, हुजूम-पर हुजूम चले आते हैं। जनसागर उमड़ पड़ता है। नाना आग्नेयास्त्रोंसे मेरा शिरच्छेदन राम-द्वारा कराया जाता है। गगनभेदी स्वर गूँजते हैं, जयजयकार होता है, उद्घोष होते हैं। राम-लक्ष्मण आगेकी लीलाएँ करनेको कुटियाको लौट पड़ते हैं। जनसमुदाय नाना वेश, नाना रूपोंमें हर्षविभोर, उल्लसित मुद्राओंमें फिर अपने-अपने घरोंकी ओर लौट पड़ता है। राहतकी एक साँस लेते हैं आप—'रावण वध हो गया, दशहरा हो गया। दशकन्धर मर गया। सत्यकी जीत हुई, असत्य हार गया। देवताओंका उपकार हो गया!' परन्तु जरा सोचें, ठहर कर विचारें—क्या रावण वस्तुतः मारा गया, क्या देवगणका कोई कल्याण हो पाया? यदि वास्तवमें मैं मर गया होता एकबार भी, तो प्रतिवर्ष मुझे इस प्रकार मारनेकी पुनः पुनः आपको क्या आवश्यकता पड़ती? सत्य यह है कि जला देते हैं आप मात्र बाँसोंकी ठठरीको, फूँकते हैं, कागजको, क्षार कर देते अपने नोटोंकी गड्डियोंको! मैं तो कभी-मरता नहीं। आपके हृदयोंमें, आपके मनमें, आपके वचनोंमें, आपके कर्मोंमें मेरा सदा सर्वथा अट्टहास हिलोरें लेता रहता है। मैं ही तो आपके साथ लौट पड़ता हूँ अपने दाहसंस्कारके पश्चात्। राम तो बेचारे आपके पास कभी फटक ही नहीं पाते। वे आपके हृदयोंमें आयें भी तो कैसे? तुलसीदासने कहा है:

जिनके क्रोध, न द्रोह न माया।
तिनके हृदय बसहुं रघुराया॥

क्रोध, द्रोह और मायामें तो प्रभु, मेरा निवास है। मैं जीवनभर आपके साथ रहता और आपका पथ-प्रदर्शन करता हूँ। आपको भ्रम रहता है कि आप रामचरित्रके उपासक हैं। वास्तवमें तो आप मुझ रावणके पुजारी हैं। कृपालु, तेवर न चढ़ायें मेरे इस कटु-सत्य कथन-पर। मगर आप नहीं मान रहे हैं। आपकी आँखोंमें प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक उठी है। देख लीजिये, यह तो मेरा ही स्वरूप है, रामका नहीं।

थोड़ा और संयम दिखायें तो एक बात और कहूँ। सत्य बहुत कड़वा होता है। शायद कटु-सत्य आपको अरुचिकर पड़ेगा। किन्तु आपने मुझे कुछ क्षण प्रदान किये ही हैं तो सुनें। आपमें से अधिकांश भक्तजन तिलक-छापे लगाकर, रामनामी दुपट्टे ओढ़कर मन्दिरोंमें जाते,

रागभोग लगाते, अष्टयाम सेवा-पूजन करते, भावविभोर होकर अश्रु-विमोचन करते और न जाने क्या-क्या उपचार करते-धरते हैं! हाथोंमें माला चलती रहती है, होंठ लगातार कुछ बुदबुदाते रहते हैं। किन्तु मैं आपसे पूछता हूँ, शपथपूर्वक बयान करें कि भगवान्के मन्दिरोंकी सीढ़ियोंके उस पार ही क्या आप अपने रामको नहीं धकेल आते? मन्दिरसे पीठ मुड़ते ही क्या आप मेरी मायामें, मेरी जीवनीमें गोते नहीं खाने लगते? क्या आप अपने नैत्यिक जीवनमें किसी मर्यादाका ध्यान रखते हैं? क्या आपने हरण होती हुई किसी सीताके परित्राणमें जटायुवत् प्राण देनेकी बात भी सोची हैं? सच कहिये, क्या आपने कभी लक्ष्मण बननेकी कल्पना की है? क्या आपने कभी हनूमान्की-सी स्वामिभक्ति निभानेकी प्रतिज्ञा भी की है? क्या आपने भरतके भायप, निषादके हृदय-नैर्मल्य, जाम्बवन्तके पौरुषकी परिकल्पना की है? मुझे विश्वास है कि आपने पदे-पदे विभीषणका अनुगमन किया होगा, वह भी स्वार्थसिद्धिके लिए, परमार्थके लिए नहीं। आपने मेरा अनुकरण किया होगा, रामका नहीं। अतः आपको मुझसे घृणा करनेका, मेरे नामपर थूकनेका कोई अधिकार नहीं। जो मैं, सो आप हैं। किन्तु इसमें भी मेरे पांडित्य, मेरी शिवभक्ति, मेरी उद्धत रामभक्तिको छोड़कर मात्र मेरे निशाचरी रूपका ही आपने अवलोकन किया है। मेरे बाह्यको ही आपने पहचाना। अन्तरको जाननेकी क्षमता भी तो नहीं रखते। तुलसी अनन्य रामभक्त सन्त थे। उन्होंने मेरे प्रति जो कहा, उचित ही था। उन्हें इसका पूर्ण अधिकार प्राप्त था। उनकी कथनी-करनी एक थी। किन्तु तुलसीके शब्दोंमें दुहराकर मुझे आड़े हाथों लेना आप लोगोंको शोभा नहीं देता, जब कि आप मनसा अन्यत् और कर्मणा अन्यत् हैं।

सो मेरे भक्तो और उपासको! आप लोग प्रबुद्ध, शुद्ध-बुद्ध कहते हैं स्वयंको। निरहंकारी और निरभिमानी भी मानते हैं अपने आपको। आपमें से अनेक वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ, तार्किक और मनीषी भी कहते हैं अपने रामको। आप लोकरंजक कलाविद् और लोकरक्षक व्यक्तित्वको भी ओढ़े बैठे हैं। कदाचित् आपमें से अनेकके हाथों विश्वशान्तिके सूत्र भी होंगे। जो भी कुछ आप हों—सामान्य या असामान्य, मेरा स्पष्ट मत है कि आप सत्य-दर्शन करें, अक्षर-भ्रममें न फँसे और न दूसरोंको अक्षर-जालमें उलझायें। मुझ रावणके मर्मको जानें-पहचानें और मेरे रावणत्वको भूल जायें। रामकी पृष्ठभूमिमें मेरा कोई अस्तित्व नहीं, किन्तु आपके संसारके परिप्रेक्ष्यमें मेरा बड़ा विराट् अस्तित्व है। आपमें से अनेक नवधा भक्तिके शास्त्रज्ञ पण्डित भी हैं। उनसे मेरा कहना है कि वे मेरी उद्धत भक्तिका भी निरूपण करें। मेरे युगके भौतिक उत्कर्षने मुझे यह निर्णय लेनेको बाध्य किया था कि मैं उसका अस्तित्व अपने हाथों ही मिटा दूँ। अतः रामके कोपको आमन्त्रण देनेके अतिरिक्त मेरे समक्ष कोई विकल्प न था। अपना उद्धार भी कराया और एक आसुरी भौतिक संस्कृतिका उन्मूलन भी सम्भव हुआ। सोचा था—लंकाकी संस्कृतिके अनन्तर एक नवीन संस्कृति जन्म लेगी भौतिकताके खण्डहरोंपर; किन्तु रामराज्यकी परिकल्पना कल्पना ही रही आजतक। अपने युगका तो मैं अकेला रावण था, पर देखता हूँ कि आज अनेक रावण चतुर्दिक् अपना ताण्डव कर रहे हैं—जिनमें न पौरुष है, न पांडित्य, न शिव-भक्ति है, न विद्यान्त ज्ञान। मेरे प्रेतने अनेकत्र उनके ऐसे-ऐसे कर्म देखे हैं, जिनकी कल्पना

मात्रसे मुझे भी ग्लानि हो आती है। आज वह ग्लानि ही मुझे यह प्रेरणा दे रही है कि मैं अपने स्वरूपको आपके सामने रखकर उससे कुछ क्षणोंके लिए मुक्ति पा लूँ।

मेरे आसुरी चरित्रको आदिकवि वाल्मीकिसे लेकर तुलसीदास तकने चित्रित किया, किन्तु उन सभी मनीषियोंसे मुझे एक शिकायत रही कि उन्होंने मेरे आरम्भिक जीवनके मनोविज्ञानकी ओर उपेक्षाकी दृष्टि रखी। मैं संक्षेपमें बता दूँ कि महामुनि पुलस्त्य मेरे पितामह, और विश्रवा थे मेरे पिता। ये सभी ब्रह्मवंशी ब्रह्मवेत्ता तपस्वी थे। पौरोहित्य उनकी जीविका थी। यज्ञ, जप, तप उनकी दिनचर्या थी। मेरे पिताने मेरा नाम रखा था वरुण। आदिकुलगुरु ब्रह्माके आश्रममें मैं वेदाध्ययन करता था! गुरुमुखसे प्राप्त आशीर्वादने मुझे समस्त ब्रह्मज्ञानका वर्चस्व प्रदान किया था। मेरी सहपाठिनी थी लंकाधिपति राजा महिदन्त (मय दानव) की पुत्री मन्दोदरी। उसने भी मेरे ही समान ब्रह्मज्ञानकी दीक्षा ली थी। गुरुदीक्षोपरान्त मुझ निर्धन तपस्वी पुत्रका परिणय मेरी इच्छाके प्रतिकूल गुरुने करा दिया। मैं दरिद्र इसके योग्य न था, कहाँ वह राजकुमारी और कहाँ मैं अकिञ्चन! इससे पूर्व महिदन्तकी लंकाके अधिकांश भागको कुवेरने हड़प रखा था। मैं गुरुके स्थानपर लंका-देशका पौरोहित्य करता और स्वर्णमुद्राएँ स्वीकार न करके यजमानोंसे वाहिनी लेता था। मेरे पास जब कुवेरसे विशालतर चमू एकत्र हो गयी, तो मैंने एक रात कुवेरको परास्त करके लंका-विजय की और उस राज्यको उसके पूर्व-स्वामी अपने श्वसुर महिदन्तको वापस करने गया। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मुझे रावण (महादानी) विशेषणसे अभिषिक्त करते हुए लंकाधिपति बना दिया। तदनन्तर वेद-विद्याओं द्वारा मैंने अपार भौतिक उन्नति की। यहाँतक कि मेरा राज्य स्वर्णनिर्मित हो गया था। यहींसे मेरे भीतरका दानव जग उठा और पथ-कुपथपर मैं दौड़ने लगा। जल-थल-नभमें मेरी शक्ति-वाहिनीकी समान गति थी। अन्तरिक्षतक मैं सशरीर यात्रा करता था। वायु, जल, अग्नि मेरे वशीभूत थे। मेरे अहंकारके विस्फोटके लिए यह बहुत था। इसके आगेकी कथा मैं आपसे क्या कहूँ? मेरे आतंकका ओर-छोर न था। सूर्यमण्डलतक मेरी धाक पहुँच चुकी थी कि महामुनि कुक्कुटने एक दिन मेरी आँख खोली। उन्होंने कहा : "राजन्, तेरे यहाँ ज्ञान-विज्ञानकी सारी भौतिक अनुसन्धान-शालाएँ और वेधशालाएँ हैं; परन्तु कोई चरित्र-शाला नहीं है। और सुन, यदि चरित्रशाला नहीं तो तेरी लंका शीघ्र ही अग्निको अर्पित होनी है।" आँखें तो खुल गयीं, किन्तु मेरा दर्पाहत दानव महामुनिकी हत्या कर बैठा। फिर तो सहस्र-सहस्र ऋषियोंकी हत्यासे ये हाथ मैंने रँगे। इसका अन्त बस रामके बाणों द्वारा ही सम्भव हो सका। बस, आज इतना ही पर्याप्त है। शेष फिर कभी, जब कभी आप मुझे सुननेकी स्थितिमें हों, कहूँगा। जय हिन्द!

●

गांधी-जयन्तीकी

पृष्ठभूमिमें

●

आज बापू !

●

श्री कन्हैयालाल

मिश्र 'राजीव'

आज बापू,
सुन रहा हूँ कि तुम्हारा जन्मदिन है
पर न जाने क्यों,
हृदय की रागिनी मेरी मलिन है।
गोत गीले
बहुत मचले प्यार के, पतझार के,
देश के
इस ओर के कुछ देर के उस पारके।
देखता था
'करैंसी' पर थे नयन गीले तुम्हारे,
और लगता
डाक-टिकटों पर बहे जल के पनारे।
दफ्तरों में
टँगे चित्रों में लगे तुम अतिदुखी थे,
मौन के
हिमगिरि, मगर मुझको लगे ज्वालामुखी थे।
सच बताना,
आज मुझको जब तुम्हारा जन्मदिन है,
क्यों तुम्हारे
वेश की रामायणी गीता मलिन है।
राष्ट्र है उत्फुल्ल
उसके जनक की यह जयन्ती है,
आज अपना दाय
वह जननायकों से माँगती है।
इधर गंगा
खौलती है, उधर पद्मा खौलती है,
शीश अगणित
तुल गये पर क्यों न 'बा' तू बोलती है।
शान्ति-वन में
आग धरने कौन बढ़ता आ रहा वह?
राजघाटी
तपस्या को भंग करता आ रहा वह।
बोल बापू,
आज तो कुछ, जब कि तेरा जन्मदिन है,
सब खुशी हैं,
एक तेरे देश की प्रतिमा मलिन है। ●

एक अद्भुत अनुभव

मैं मूर्तिको मात्र पत्थर नहीं समझता

डा० (सेठ) गोविन्ददास

★

जिस अद्भुत अनुभवका मैं आज विवरण दे रहा हूँ, पहले उसकी पृष्ठभूमिके संबन्धमें कुछ कहना अनुपयुक्त न होगा।

हमारा कुटुम्ब सनातनधर्मके वल्लभ-संप्रदायका अनुयायी है। मेरे पितामह राजा गोकुलदासजीके पितामह सेठ सेवारामजी कोई पौने दो सौ वर्ष पहले राजस्थानके जैसलमेर नगरसे मध्यप्रदेशके जबलपुर नगरमें आकर बसे। हमारे मकानका कुछ हिस्सा उन्हींके समय निर्मित हुआ था। हमारा गोपाललालजीका कौटुम्बिक मंदिर उन्हींने प्रतिष्ठित किया था। इस मन्दिरकी स्थापनाको १४० वर्ष हो चुके हैं। तबसे हमारे कुटुम्बी वल्लभ-सम्प्रदायमें ही दीक्षित होते रहे हैं। मेरा जन्म भी उसी वायुमण्डलमें हुआ। उसी वातावरणमें मेरा लालन-पालन हुआ। जबसे मुझे होश है, तबसे सनातनधर्मके संस्कारोंका मुझपर प्रभाव रहा है। मेरा यज्ञोपवीत जब मैं दस वर्षका था, अर्थात् चौसठ वर्ष पूर्व, तब हुआ था। उस समय राजा-साहब जीवित थे और उन्होंने उसी दिन एक पंडित रखा था, जिसने मुझसे उसी दिनसे संध्योपासन करवाया। इसके पूर्व लगभग पांच वर्षकी अवस्थामें विष्णुसहस्रनाम, नारायण कवच-स्तोत्र आदि मुझे कण्ठस्थ करा दिये थे और होश आते ही मैं अपनी दीक्षाका **श्रीकृष्णः शरणं मम** मन्त्रका जप करने लग गया था।

कोई छह वर्ष पूर्व मुझपर एक अप्रत्याशित भीषण दैवी-आघात हुआ। मेरे छोटे पुत्र जगमोहनदास, जो मध्यप्रदेशमें लगभग नौ वर्ष तक मन्त्री रह चुके थे, एकाएक चल बसे। किसी प्रकार शान्ति प्राप्त करनेके लिए मैं देशभरमें भटका, अनेक महात्माओंसे मिला और मुझे जो भी शान्ति प्राप्त हुई, वह श्री स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजके कारण।

अध्यात्मका यह अवलम्ब बढ़ता गया। मैंने उषःकालमें ही उठकर स्नान-संध्या, पूजा आदि आरम्भ की। तारोंके रहते हुए प्रातःकालकी संध्या हो जाना उत्तम माना जाता है। अतः यद्यपि गत चौसठ वर्षोंसे मेरी त्रिकाल-संध्या चल रही थी; तथापि अब वह ठीक समय होने लगी। वल्लभ-संप्रदायमें छह दर्शन होते हैं। जबलपुर रहते हुए मैं अपने कौटुम्बिक मंदिरके छहों दर्शन करने लगा और अपनी दीक्षाके मन्त्र **श्रीकृष्णः शरणं मम** का निरन्तर जप, यद्यपि बीच-बीचमें वह विस्मृत भी हो जाता है।

इस प्रकारके संस्कारोंमें लालित-पालित होनेपर और निरन्तर संध्या-पूजा, जप-पाठ, दर्शन आदि चलते रहनेपर भी आधुनिक कालके वायुमण्डलका भी मुझपर कतई असर न हो, यह बात नहीं थी। अनेकबार मुझे ईश्वरके अस्तित्वपर संशय होता और लगता कि यह सब निरर्थक ही तो नहीं है?

गत जूनके महीनेमें मैं बम्बईमें था। एक दिन मैंने श्री स्वामी अखण्डानन्दजीसे निवेदन किया कि इतना सब करते हुए मुझे भगवान्‌का न तो कोई अनुभव हो रहा है और न भगवान्‌के अस्तित्वके सम्बन्धमें मेरे संशयोंका सर्वथा मूलोच्छेदन ही। स्वामीजीके मुखसे एकाएक निकल पड़ा: 'अब तुम्हें अनुभव हो जायगा।' मेरा यह मत हो गया है कि स्वामीजीके मुखसे जो भी निकल जाता है, वह सत्य सिद्ध हो जाता है।

सन् १९७० की पहली जुलाईकी रातको जबलपुरमें मैं अपनी पत्नीके कमरेमें बैठा हुआ था। मेरी पत्नी मेरे पास बैठी हुई थी और मेरी बड़ी पुत्री रत्नकुमारी भी। रत्नकुमारीने एकाएक मुझसे पूछा: "आप इतना सब करते हैं, आपको कोई अनुभव हुआ?" मुझे झुँझलाहट हुई और मैंने उसे उत्तर दिया: "न मुझे कोई अनुभव हुआ और न होनेवाला है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि पत्थरके सामने यह सब कर रहा हूँ। क्या अनुभव हो सकता है? सभी निरर्थक है। किन्तु अब जीवनका निशाकाल है, अतः जो कुछ कर रहा हूँ उसे छोड़ूँगा कभी नहीं।"

२ जुलाईको वह अद्भुत अनुभव हुआ, जिसकी यह उपर्युक्त पृष्ठभूमि है। जब मैं मंगलाके दर्शनके लिए गया, तो मुझे भास हुआ कि श्री गोपाललालजीके मुखपर कुछ मुस्कराहट-सी है। मेरा पुराना संदेह लौटा। मनमें आया: यह निरा भ्रम है, कहीं पत्थर भी मुस्करा सकता है?

राजभोगके दर्शनोंमें जब आरती हो रही थी और मैं घण्टा बजा रहा था, एकाएक मेरे कानोंमें ये वाक्य गूँजे: "तुम मुझे पत्थरका समझते हो? सेवारामजीसे लेकर तुम्हारी सारी पीढ़ियोंको मैंने तारा है। स्वामी रामकृष्ण परमहंससे उनकी कालीकी पत्थरकी मूर्ति नहीं बोलती थी तो कौन बोलता था? वल्लभ-संप्रदायके चौरासी और दो-सौ बावन वैष्णवोंसे मैं किस-किस तरह बोला?" मैं अवाक् और स्तब्ध रह गया! ऐसा अनुभव क्वचित् ही किसीको होता है।

जन्माष्टमीको मैं नाथद्वारे गया। राजभोग के दर्शनोंमें कानोंमें फिर वैसा ही स्वर! केवल दो वाक्य: "तुम्हारे गोपाललालजी और मुझमें कोई अन्तर नहीं। अब हम तुम्हें तारेंगे।" कितना बड़ा आश्वासन। शायद इससे बड़ा आश्वासन सम्भव नहीं।

कोई दो सप्ताह हुए, फिर एक विलक्षण अनुभव हुआ। जबलपुरके अपने मन्दिरमें जब मैं राजभोगके दर्शन कर रहा था, एकाएक मेरी आँखोंसे कुछ आँसू निकल पड़े और मुझे अनुभूति हुई, जैसे किसी अकथनीय कोमल वस्तुने मेरी आँखें पोंछ दीं। शायद उससे अधिक कोमल और कोई वस्तु होना सम्भव नहीं।

अभी भी जब मुझे ये अनुभव स्मरण आते हैं, तब यह अनुभूत हो जाता है कि इसका आधुनिक विज्ञानके पास कोई तर्कपूर्ण उत्तर सम्भव नहीं। यह अनुभव आधुनिक विज्ञानसे परेकी वस्तु है। आजकल एक अंग्रेजी शब्दका बहुत प्रचार हो गया है "हिल्यूसीनेशन"। परन्तु यह अनुभव मेरे मतानुसार किसी भी प्रकार इस शब्दके दायरेमें नहीं आता। न कोई स्वप्न, न कोई कल्पना! मेरे सदृश संशयात्माओंको इस प्रकारके अनुभव हुए हैं, ऐसे दृष्टान्त कम नहीं। इस प्रकारके अद्भुत अनुभव मात्र भगवदनुग्रह से ही सम्भव होते हैं। ●

भारतीय संस्कृति बनाम सर्वहारा संस्कृति

जड़ें किसकी गहरी और मजबूत ?

श्री वियोगी हरि

★

जहाँतक भी नजर फेंको, हजारों झोपड़ियाँ और बाँस-फूसकी कुटिया दिखाई दे रही हैं। कितने ही यात्रियोंने तो ठंढी रेतपर मैदानमें ही रतजगा किया। बाढ़की तरह उमड़ते ही चले आ रहे हैं यात्रियोंके दल-के-दल, सिरपर पोटलियाँ रखें! बहुत सारे बैलगाड़ियोंपर और हजारों यात्री दूर-दूरके गाँवोंसे पैदल ही गाते-बजाते चले आ रहे हैं। गंगा और यमुनाके तट भरे पड़े हैं, लाखों यात्रियोंसे। सैकड़ों नौकाएँ हलकी-हलकी लहरोंपर इठलाती जा रही हैं संगमकी ओर। उनमें बैठे यात्री झूम-झूमकर ढोलक और खंजड़ीपर भजन गा रहे हैं और हाथ उठा-उठाकर 'गंगामाईकी जय' बोल रहे हैं। नहान तो रातके तीन बजेसे ही माघकी इस हड़कंप ठंडमें शुरू हो गया!

यों तो पूरे माघभर हरवर्ष प्रयागमें मेला भरा करता है, पर यह वर्ष तो कुम्भ-पर्वका है। तीर्थ-यात्रियोंके उत्साह और उमंगका कोई पार नहीं। देहातों और नगरोंमें आमंत्रणके परचे तो बाँटे नहीं गये, न दीवारोंपर कोई पोस्टर चिपकाये गये। क्या 'प्रयाग चलो', 'प्रयाग चलो'का नारा लगाया गया था संगमपर जाकर नहानेका?

और, ऐसे ही उज्जैनका क्षिप्रा-तट तथा नासिकका गोदावरीका तट लाखों ही यात्रियोंसे भर जाता और बस जाता है, जब-जब कुम्भ वहाँ आता है। दक्षिण भारतमें भी ऐसे ही विशाल मेले देखनेमें आते हैं।

इसी प्रकार पुरी, मथुरा, काशी, पंढरपुर आदिकी तीर्थ-यात्राएँ जब चलती हैं, तो उनके अनूठे दृश्य देखते ही बनते हैं। देखकर सारा तर्कवाद मूक और स्तब्ध हो जाता है वहाँ! इसी तरह हिन्दुस्तानके हर हिस्से से लाखों ज़ियारती हर साल अजमेर-शरीफमें इकट्ठा होते हैं।

कहते हैं कि ये विशाल जनसमूह इस तरह जो उमड़ पड़ते हैं इन तीर्थों में अनबुलाये ही, उसके पीछे अज्ञान और अन्ध-श्रद्धा काम करती है। अन्ध-श्रद्धाके विरुद्ध धुंआधार प्रचार पचासों वर्षोंसे हो रहा है, पर उसका कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ रहा। इन विशाल मेलों और तीर्थ-यात्राओंकी वज्र-जैसी बुनियाद न जाने किन हाथोंने रखी होगी और कब?

इधर दिल्लीमें अभी, पिछले ही दिनों, एक नहीं, दो-दो भारी जनसमूह देखनेमें आये। ट्रकोंमें भर-भरकर उनको शहरोंसे, कस्बोंसे और गाँवोंसे ला-लाकर एकत्र किया गया था जुलूसोंके रूपमें। सारा आयोजनाबद्ध। 'दिल्ली चलो' का नारा घर-घर पहुँचाया गया था। बहुतेरे तो शायद इन जुलूसोंका आशय समझे भी न होंगे। सिखाये और रटाये नारे वे जोर-जोरसे अलबत्ता लगा रहे थे, ट्रकोंपर, गाड़ियोंपर, ताँगा और साइकिलोंपर। इन जुलूसोंमें उनकी पार्टियोंकी झंडियाँ फहरा रही थीं।

स्वेच्छासे एकत्र हुए लाखों यात्रियोंके वे मेले देखें, और राजनीतिक पार्टियों द्वारा आमंत्रितोंके ये जुलूस भी देखे। जहाँ वे अयत्न-साधित थे जहाँ ये जुलूस थे प्रयत्ने-साधित। प्रश्न सहसा मनमें उठता है कि संस्कृति और राजनीति इन दोनोंमें जड़ें किसकी गहरी और मजबूत हैं ?

ऐसे ही जब सांस्कृतिक एवं धार्मिक त्योहारों तथा शासकीय आयोजनोंको देखते हैं, तो वही प्रश्न फिर सामने आ खड़ा हो जाता है।

सभी छोटे-बड़े मकानोंकी दीवारें चाँदनी-सी फक सफेद और कोई-कोई विविध रंगोंसे पोती हुई दीखती हैं। आँगन भी खूब साफ-सुथरे। भीतर और बाहर अनेक पंक्तियोंमें दीपक जल रहे हैं। सभीमें उत्सवका उत्साह और उमंग है। बच्चे फुलझड़ियाँ जला रहे हैं, और पटाखे छोड़ रहे हैं। आज दीवाली है न! सफाई और सफेदी और जगमगाते दीपोंकी यह अनोखी तैयारी क्या किसी शासकीय आदेशसे हुई है ? कहाँ किसी सरकारी हुक्मका या किसी सार्वजनिक संस्थाकी अपीलका इतने व्यापक रूपमें असर पड़ा सुना गया है ?

हुक्मन या पुरज़ोर अपील द्वारा आयोजित समारोह दीवाली और होलीकी तुलनामें कितने हलके और फीके लगते हैं, क्या इसे प्रमाणित करनेकी आवश्यकता है ?

ईद, मोहर्रम, क्रिसमस और ईस्टरके दिन किस शाही हुक्मसे सारे देशमें और दुनियामें सर्वत्र मनाये जाते हैं ?

कृष्ण-जन्माष्टमी हर मंदिरमें और हर हिन्दू-घरमें और ऐसे ही रामनवमी तथा बुद्ध और महावीरकी जयन्तियाँ बिना किसी विज्ञापनके, जिस भक्तिभावनापूर्वक मनायी जाती हैं, उनका मिलान जब राष्ट्र-नेताओंके जन्म-दिवसों के साथ करते हैं, तब वही प्रश्न फिर खड़ा हो जाता है अपना उत्तर पानेके लिए।

जान पड़ता है कि संस्कृति उन शिलाओंपर खुदी या लिखी रहती है जिनपर किसी हवा या पानी का असर नहीं पड़ता। राज-सत्ताएँ उनसे आगे उठती हैं और गिर जाती हैं। संस्कृतिपर अपने रंग भी वे कुछ-कुछ चढ़ाती हैं, पर उसका मूलरूप वैसा ही बना रहता है। यह सही है कि इधर चीनके सत्ताधारियोंने पुराना सब कुछ, तोड़-फोड़कर मिटा डालनेका यत्न किया है, क्योंकि वे सर्वहारा संस्कृतिका निर्माण करना चाहते हैं। किन्तु लक्ष-लक्ष जनोंके अन्तस्तलपर अंकित संस्कृतिके परंपरित अंकोंको वे शस्त्र-बलसे सदाके लिए मिटा नहीं सकेंगे। हो सकता है कि उसे मिटानेवाले ही मिट जायें। सांस्कृतिक परंपराकी मूल प्रकृतिका उन्मूलन करना संभव नहीं। साम्यवादके विश्व-स्वीकृत महान् नेता लेनिन ने सन् १९२२ में लिखा था :

'उस सारी सभ्यता-संस्कृतिको, जो पूँजीवाद निर्मित कर गया है हमें स्वीकार करना होगा। उसके द्वारा ही समाजवाद गढ़ना होगा। पूर्व पीढ़ीके सारे विज्ञान, यांत्रिकी ज्ञान और कलाको स्वीकृत करना होगा। हम सर्वहारा संस्कृतिके निर्माणकी समस्या तबतक हल नहीं कर सकते, तबतक कि यह बात साफ-साफ समझ न लें कि मनुष्य-जातिके सारे विकास और सम्पूर्ण संस्कृतिके ज्ञानको आहरण किये बिना यह सम्भव नहीं और उसे समझकर संस्कृतिकी 'पुनर्रचना' करके ही हम सर्वहारा संस्कृतिकी

वेदना के भारपर वरदान निर्भर है !

१. याचना, आराधना औ साधना
भावनाकी भिन्नताके नाम हैं,
यह तरलता, स्थूलता या सूक्ष्मता
दिव्य जीवनके विविध संग्राम हैं;
कल्पनासे कुछ नहीं बाहर, मगर—
आपके विस्तारपर अनुमान निर्भर है।

२. है न इतनी भी जगह इस भूमिपर
मुक्त होकर पाँवतक फैला सकूँ,
व्योममें मिलता नहीं आधार कुछ,
रुक जहाँ दो क्षण हृदय बहला सकूँ,
इसलिए यह प्राण पागल चीखते
और इस चीत्कारपर तूफान निर्भर है।

३. जन्म पाकर प्राणके संघर्ष से
साँसके परिवारमें अरमान पलते हैं,
चेतनाके शक्तिमय लेकर चरण
छाँहमें विश्वासके अभियान चलते हैं;
बीनका इतिहास ही आघातमय,
आँसुओंके तारपर मुसकान निर्भर है।
वेदनाके भारपर वरदान निर्भर है।

—डा० मोहन अवस्थी

रचना करनेमें सफल हो सकेंगे। सर्वहारा संस्कृति अज्ञात शून्यलोकसे उपजनेवाली चीज नहीं, और न उन लोगके द्वारा गढ़ी जायगी, जो सर्वहारा संस्कृतिके विशेषज्ञ विद्वान् कहे जाते हैं। ये सब बातें मूर्खता है, इनका कोई अर्थ नहीं होता। सर्वहारा-संस्कृति उसी ज्ञानका स्वाभाविक विकास होगी जिसे पूँजीवादी, साम्यवादी और अमलातांत्रिक समाजों-की शासन-जुआके नीचे हमारी सम्पूर्ण मनुष्य-जातिने विकसित किया है।'' [शेक्सपियर : हिज़ आडिएन्स (नीरेन्द्रनाथ राय) पृष्ठ ४९-५०]

जो प्रश्न हठात् बार-बार मनमें उठा है, उसका उत्तर लेनिनका उक्त उद्धरण क्या नहीं दे रहा है?

●

कहानी

चिन्ताधारा

श्री जगदीशचन्द्र मिश्र

★

देहरादूनसे सात-आठ मील दूर सहसधाराकी एक निर्जन उपत्यकामें पहुँचकर प्रकाशने सन्तोषकी साँस ली। आदमीकी भीड़ एवं सामाजिक-पारिवारिक समस्याओंने वर्षोंसे उसके मनको बोझिल बना दिया था। शरीर कमजोर और चेहरा पीला पड़ता जा रहा था। किन्तु डाक्टरोंने उसे हमेशा नीरोग बताया। उसके सीनेकी धड़कन, नाड़ीकी गति ठीक-ठाक चल रही थी।

लेकिन प्रकाश अपनेको स्वयं कमजोर, रुग्ण और परेशान समझता। ये बातें उसके दिलमें घर कर गयी थीं, जिसे कोई भी दवा-फरोश-डाक्टर निकालनेमें असमर्थ था। संयोगसे एक मनोवैज्ञानिकसे प्रकाशकी भेंट हो गयी। उसने प्रकाशको पढ़ा, समझा और अनेक तरहसे उसका परीक्षण किया और राय दी कि यदि वह कुछ दिन एकान्तवास करे, तो अच्छा हो जायगा।

उसी मनोवैज्ञानिकने सहसधारा नामक जगह भी बतायी। उसने यह भी बताया कि इस जगहपर बहुत-से बुद्धिजीवी और चिन्तक अपनी सेहत ठीक करनेके लिए जाते हैं। वहाँकी आबहवा स्वास्थ्यके लिए अत्यन्त लाभकारी है, वहाँकी मनोरम प्राकृतिक छटा देखो आदमी स्वतः ही सारी चिन्ताएँ भूल जाता है।

और, जब उसने बताया कि देशके अनेक ऋषि-मुनि इस पवित्र स्थलीकी शमा बढ़ा चुके हैं तो प्रकाशके मनमें सहसधाराके प्रति सहज ही श्रद्धा हो गयी। उन अनेक स्थानोंके चित्र उसके कल्पना-लोकमें स्वतः उभर आये, जहाँ कुछ कालतक वासकर महात्माओंने आज निर्जन जंगलों-पहाड़ोंको पवित्र तीर्थस्थलका रूप बना दिया है। इस भावुकता में प्रकाश कुछ क्षणके लिए बिना सहसधारा गये ही चिन्तामुक्त हो गया था।

मनोवैज्ञानिकके निर्देशानुसार उसने अपने लिए सारी आवश्यक सामग्री एकत्र कर ली थी। इसके अतिरिक्त उसने हजारों रुपये नकद भी रख लिये थे। कुल एक महीनेका कार्यक्रम बनाकर वह यहाँके लिए चल पड़ा था। किन्तु देहरादूनसे टैक्सी द्वारा जब वह सहसधारा

पहुँचा और सारे सामान उतारकर टैक्सी घुर्रं-घुर्रं करती वापस चली गयी, प्रकाश काफी देर तक शान्तभावसे वहीं खड़ा रहा।

उसे अपने घरकी याद आयी। इसी प्रकार जब सामान लेकर वह अपने घर उतरता तो बच्चों, कुटुंबियोंकी भारी भीड़ उसे घेर लेती। बिना कुछ कहे ही उसका सारा सामान घर पहुँच जाता। सारे घरमें खुशियाली छा जाती और अपने हकका सामान पाकर बच्चे-सयाने प्रसन्न हो उठते।

लेकिन यहाँ ऐसा कोई नहीं। किसीको क्या पड़ी है कि उसकी ओर देखे। प्रकाशको स्वयं उनसे कोई अपेक्षा नहीं थी। वह सारे सामान केवल अपने लिए ले गया था। पूरे महीने-भर उसे यहाँ रहना था। किन्तु अपने हाथसे उसने कभी कोई सामान नहीं ढोया और ढोकर भी यहाँ कहाँ ले जाता? कोई धर्मशाला, होटल, घर-छाँव तो हैं नहीं। सिर्फ दोनों ओर उन्नत पहाड़ोंके बीच हर-हर कर बहती सहसधाराएँ।

यहाँ घूमनेके लिए बहुतेरे लोग आते-जाते दिखायी दे रहे थे। किन्तु एक-आध झोला, बैग, अटैचीके अलावा किसीके पास अधिक सामान नहीं। वे अपने सामान लेकर आसानीसे आ-जा सकते हैं।

घंटों बीत गये, किन्तु प्रकाशको कोई रास्ता नहीं सूझा। इसी बीच एक साधु अनायास आकर उसके सामने खड़ा हो गया। उसने मुस्कराते हुए पूछा : 'सहसधारा पहुँचकर भी तुम परेशान हो! क्या बात है?'

'कुछ नहीं, महाराज, मैं ......मैं यहाँ महीनेभर रहनेके लिए आया हूँ; किन्तु...... !'

'किन्तु क्या? महीनेभर छोड़ सालभर रह सकते हो। यहाँ स्थानकी कोई कमी नहीं!'

'लेकिन ये सामान......!'

'सामान...सामान लेकर क्यों आये? किसने ऐसी राय दी तुम्हें? परमात्माकी कृपा-से यहाँ कोई भी भूखा नहीं रहता। सात वर्ष से मैं खुद रहा हूँ। हमारे गुरुदेव पता नहीं, कबसे हैं। हमारी तरह सैकड़ों लोग यहाँ भगवान्‌का भजनकर अपना जन्म सुधारनेमें लगे हैं। यह तो खुला दरबार है। यहाँ चाहे जितने दिन रह सकते हो।'

'महाराज, मेरी आदत दान देनेकी है, माँगनेकी नहीं। इसलिए अपनी आवश्यकताकी हर चीज अपने साथ लाया हूँ।'

'तो तुमसे माँगनेको कौन कह रहा है! क्या-क्या चाहिए तुम्हें?'

'.......।'

'अच्छा इन गट्ठरों में क्या-क्या है? यही बता दो!'

'महीनेभरकी खुराक, आटा, दाल, चावल, घी, शक्कर, सिगरेट, शराब, साबुन, तेल, कपड़े-लत्ते और थोड़ी-बहुत नकदी...... !'

'ठीक, लेकिन इनमें से दानमें कितना देना है?'

'इसमें दानके लिए कुछ नहीं है। इतना बोझ तो वैसे ही भारी हो रहा था......!'

'कोई बात नहीं। अच्छा ऐसा करो, यह सब तुम यहीं दान कर दो। मैं लौटकर आता हूँ, फिर तुम्हें आश्रममें ले चलूँगा। तुम्हें महीनेभर किसी चीजकी कमी नहीं पड़ेगी।'

सहज भावसे उपदेशकर महात्माजी चले गये और शाम होनेपर लौटे। प्रकाश आधी समग्री दानकर चुपचाप हारे जुआड़ीकी तरह साधुकी बाट जोह रहा था। उन्हें पाकर वह प्रयत्न हो गया, क्योंकि सूर्यास्त होते देख घबरा उठा था। किन्तु महात्माको आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा :

'तुमने अभीतक इन सामानोंसे अपना पिण्ड नहीं छुड़ाया?'

'क्या करता महाराज, अभी केवल १० व्यक्ति ही यहाँ आ सके हैं, जिन्हें कुछ न कुछ हमने दान दिया है। जोह रहा हूँ कि कुछ और आ जायँ और...'

'ह्...ह् ह् ह्! 'तब तो तुम अच्छे दाता मिले। मेरे भाई, क्या एक महीनेकी सामग्री किसी एक आदमीको दानमें नहीं दे सकते थे?'

महाराज इतना अधिक दान हमने कहीं नहीं दिया है। हमारे बाप-दादों ने भी नहीं दिया है!'

'खैर कोई बात नहीं! मेरे पूजनका समय हो चला है। मैं अब चल रहा हूँ। तुम अपनी सारी सामग्री दानमें देनेके बाद मुझे पुकार लेना, मैं आ जाऊँगा!'

और महात्मा जी फिर चले गये।

शाम घिरने लगी, अँधेरा बढ़ने लगा। पहाड़ियोंसे हरहराती जलधाराओंका शोर धीरे-धीरे तेज होता गया और प्रकाश अपने सामानोंके बीच घिरा याचकोंकी बाट जोहता खड़ा रहा। घूमनेवाले शामके पहले ही लौट गये थे, अतः आदमियोंका आवागमन लगभग ठप-सा हो चला था। प्रकाश इतने अधिक सामानोंको किसके हवाले कर देता?

इसी बीच कुछ व्यक्तियोंके आनेकी आहट मिली। प्रकाशने आवाज देकर उन्हें पास बुलाया। उसने विनम्रतापूर्वक दान देनेकी इच्छा प्रकट की; किन्तु आनेवालोंने लेनेसे अस्वीकार कर दिया। अँधेरेमें प्रकाशको दिखाई नहीं पड़ रहा था। वे सब साधु थे और गुरुके उपदेश सुन अपनी कुटियामें लौट रहे थे। उन्होंने बताया कि इसी मायासे मुक्त होकर वे सहसधारा आये हैं, अतः अब वे पुनः उसे स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं।

बल्कि एक साधुने प्रकाशसे रातभर अपनी कुटियामें चलकर रहनेका आग्रह किया और उसकी सुरक्षाके लिए भगवान्‌से मंगल-कामना की। किन्तु प्रकाश तैयार नहीं हुआ। वह अपने सामानोंको दान किये बिना मजबूर था।

अन्तमें सभी साधु चले गये। प्रकाश फिर अकेला हो गया। अँधेरा अब और घिर चुका था। काफी देर प्रतीक्षा करनेके बाद भी कोई उसके पास नहीं आया। मारे भयके उसकी बुरी हालत हो रही थी।

उस समय तो उसकी जानमें जान आ गयी, जब एक लँगड़ा आदमी घिसकता हुआ उसके पास आ पहुँचा। प्रकाशने अपने बचे हुए सारे सामानोंको उसे दान में दे दिया और स्वयं उसी साधुकी गुफाकी ओर चल पड़ा। उसने दूरसे ही 'महात्माजी!' कहकर आवाज

लगायो। वह साधु दौड़ता हुआ उसके पास आ गया। प्रकाशको खाली हाथ देख उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। एक मोहग्रस्त आदमीको माया-मुक्त करनेकी खुशीमें वह प्रकाशके गलेसे लिपट गया।

लेकिन यह क्या! प्रकाशकी कमरमें रुपयोंकी थैली बँधी हुई थी।

साधुने पूछा : 'तुमने अपना सब कुछ दान कर दिया?'

'जी!'

'फिर कमरमें क्या बँधा है?'

'नकद रुपये हैं महाराज!'

'इन रुपयोंको इसी धारमें बहा दो। यहाँ कोई हाट-बाजार नहीं है, इसलिए इनकी कोई आवश्यकता नहीं!'

'जो आज्ञा!'—कहकर उसने थैलीको भी उतार फेंका।

साधु बड़ी प्रसन्नतासे प्रकाशको अपनी गुफामें ले गया। जहाँ कोई भी सामान नहीं··· सब कुछ खाली···शान्त! किन्तु प्रकाशको यहाँ बड़ी खुशी मिल रही थी। कोई चिन्ता नहीं।

रात्रि-विश्राम करनेके बाद प्रकाश जब साधुके साथ ब्राह्म मुहूर्त में उठकर सहसधारामें नहा-धोकर ईश्वरका ध्यान करके खाली हुआ, तो उसे लगा कि उसके चेहरेपर तेज, मनमें जीवन्तता और विचारोंमें पौष्टिकता भर गयी है। अब वह इस बातका अनुभव कर रहा है कि जिस संपत्तिसे उसने अपना पिण्ड छुड़ाया, ये सारे विकार उसीके दिये थे।

उसने लौटनेपर देखा तो उस लँगड़ेको जंगली जानवरोंने मार डाला है और सारा सामान जहाँका तहाँ पड़ा है।

प्रकाशने निश्चित कर लिया है कि अब वह अन्धकारकी ओर कभी नहीं जायगा। उसकी चिन्ताधारा सरसधारामें विलीन हो गयी।

●

गहरे पानी पैठ !

हिन्दुओंकी मरणोत्तर-क्रियाएँ

श्री केदारनाथ प्रभाकर
एम० ए० एफ० ए० (अमेरिका)

★

हिन्दुओंमें गर्भाधानसे लेकर शरीरान्त तक सोलह संस्कार होते हैं, जिनमें नामकरण संस्कार, चौल संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार, विवाह संस्कार एवं अन्त्येष्टि संस्कार विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। इन सभी संस्कारोंका अपना वैज्ञानिक महत्त्व तो है ही, फिर भी सर्वप्रथम ये आध्यात्मिक विकासकी दृष्टिसे ही रखे गये हैं। इनमें अन्त्येष्टि संस्कार मरनेके पश्चात् मृत शरीरको अग्नि प्रदान करके वैदिक मन्त्रों द्वारा दाह-क्रियासे सम्पन्न किया जाता है। वर्ण और आश्रमके अनुसार दशगात्र-विधान, षोडश-श्राद्ध, सपिण्डीकरण आदि मरणोत्तर-क्रियाएँ भी इसी संस्कारके अन्तर्गत हैं।

अन्त्येष्टिका वैज्ञानिक तत्त्व

हिन्दू-संस्कृतिके अनुसार पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन-बुद्धि-अहंकार, पांच भूत और पांच इन्द्रियोंके विषय, इस प्रकार २३ तत्त्वोंसे पिण्डरूप षाट्कौषिक स्थूलशरीर तथा पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच प्राणवायु, बुद्धि और मन—इन १७ वस्तुओंके सूक्ष्म शरीर बना है। मरणोपरान्त जब उपर्युक्त सत्रह वस्तुओंके साथ जीवका स्थूल शरीरसे निकलना होता है, तब उसे सूक्ष्म शरीरके रक्षार्थ एक वायवीय शरीर मिलता है। इसीसे वह अपने कर्मानुसार कृष्ण या शुक्ल गतिको प्राप्त होता है। षाट्कौषिक स्थूल शरीरसे निकलते ही तत्काल वह वायवीय शरीर ग्रहण करता है। इसी समय जीवकी प्रेत'-संज्ञा पड़ती है। वह अधिक चलनेवाला और हल्का जीव बन जाता है। स्थूलशरीरमें अधिक समयतक निवास होनेके कारण शरीरके साथ उसका विशेष अभिनिवेश हो जाता है। अतएव जीव बार-बार वायुप्रधान शरीर द्वारा पूर्वशरीरके सूक्ष्मावयवों (परमाणुओं) की ओर रहनेकी चेष्टा करता रहता है। इसी प्रेतत्वसे निवृत्तिके लिए दशगात्रादि श्राद्धक्रियाएँ हिन्दू-धर्ममें बतायी गयी हैं। मूर्ख, विद्वान् सभीके लिए प्रेतत्वविमुक्तिकामः ऐसा श्राद्ध-प्रकरणमें संकल्प पढ़ा जाता है।

भारतभूमिका सपूत अपने बड़े-बूढ़ोंका सम्मान करनेमें विश्वके समस्त मानव-समाजोंके बीच सिरमौर है। शास्त्रनिर्धारित सुव्यवस्थित पितृपूजा इसका ज्वलन्त प्रमाण है, जो आजके भौतिक विज्ञानवादी युगमें भी अखण्ड चालू है। विद्वानोंने विज्ञानकी कसौटीपर इसे बहुत बार कसकर सच्चा सिद्ध कर दिया है। सबसे बड़ी बात स्वार्थकी भी है। हमारे लोकसे निकटतम उनका लोक पड़ता है और वे प्रसन्न हो हमें प्रधान रूपसे आयु, सन्तान और धन देते हैं। इस लौकिक प्रत्यक्ष अनुपेक्ष्य लाभके परिप्रेक्ष्यमें पितृपूजनकी उपादयेता सुस्पष्ट है। आश्विन कृष्णपक्षारम्भसे 'यावद् वृश्चिकदर्शनम्' (वृश्चिककी सूर्यसंक्रान्तिके पूर्वतक इस पूजाकी व्याप्ति है। इसीलिए दीपावलीमें भी उल्कादर्शन प्रधान रूपसे विहित है। इस सन्दर्भमें मरणोत्तर-क्रियाओंकी व्याख्याके साथ विद्वान् लेखकके ये विचार सचमुच मननीय हैं।

—सम्पादक

मृत आत्माकी वासना पृथ्वीमें गड़े तथा कहीं गन्धयुक्त पड़े पूर्वशरीरपर न जाय और उससे जीवकी मुक्ति हो जाय, इसलिए हिन्दुओंमें मृत शरीरको जलानेकी प्रथा प्रचलित हुई। अग्निसंस्कारसे मृत शरीरका पार्थिवतत्त्व कण-कण जलकर रूपान्तर ग्रहण कर लेता है। फिर भस्मरूप (फूल) पार्थिवतत्त्व भगवती भागीरथी आदि तीर्थोंकी पावन जलधारामें प्रवाहित कर दिया जाता है। वह परम पवित्र जल उन भस्मकणोंको स्वस्वरूपमें परिवर्तित कर लेता है। तब मृत आत्माका सम्बन्ध पूर्वशरीरसे विच्छिन्न हो जाता है। शास्त्र-विहित श्राद्धादिक क्रिया द्वारा प्रदत्त जलादि सामग्रीसे तृप्त होकर वह प्रेत-शरीरको छोड़ देता है।

संन्यासियोंके मृत शरीरके लिए हिन्दुओंमें अग्नि-संस्कार नहीं किया जाता। इसका भी एक रहस्य है कि कामनानुबन्धी कर्मोंको तथा कृत-कर्म-फलोंको त्यागनेसे और श्रीभगवच्चरणारविन्दोंमें गाढ़ अनुराग होनेसे उसकी शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, धनादिकी वासना जीवन-दशामें ही छूट जाती है। अतएव शरीरसे निकली हुई संन्यासियोंकी आत्मा शीघ्रातिशीघ्र शुक्ल-गतिसे प्रयाण कर जाती है। वहाँ मृत शरीरकी ओर आकर्षण करनेवाली सामग्री ही नहीं रह जाती, इसलिए हिन्दूलोग संन्यासियोंके लिए श्राद्धादि क्रियाएँ नहीं करते।

हिन्दुओंमें छोटे बालकोंका शरीर भी नहीं जलाया जाता। उसे भूमिके अंदर गाड़ दिया जाता है। सूक्ष्म शरीरके साथ स्थूलशरीरमें प्रविष्ट आत्माका गाढ़ सम्बन्ध (अभिनिवेश) स्थूल-शरीरमें अल्प दिनोंमें नहीं होता। अतएव बालकोंकी मृत आत्मा पूर्वशरीरका सम्बन्ध शीघ्रातिशीघ्र त्यागकर सञ्चित कर्मानुसार अपर शरीरको प्राप्त करती है। इसी कारण हिन्दुओंमें अल्पवयस्क बालकोंके लिए यह संस्कार नहीं बताया गया है।

मृत आत्माओंका प्रगाढ़ अन्वय (वासना) पूर्वशरीरके ऊपर अवश्य रहता है। इसी आधारपर मुसलमान एवं ईसाई धर्मोंमें भी जहाँ शरीर गाड़ा जाता है, वहीं उनके धर्मग्रन्थोंमें कुछ क्रियाएँ बतायी गयी हैं। इन धर्मोंमें ऐसा बताया जाता है कि जबतक प्रलय (कयामत) नहीं होती, तबतक जीव मृतक शरीरके पास ही सुख-दुःख भोगता है। मिस्रदेशमें पिरामिड भी

प्राचीन कालमें इसी उद्देश्यको सामने रखकर मरणोपरान्त तैयार किये जाते थे। इन पिरामिडोंमें जीवनोपयोगी समस्त वस्तुएँ रख दी जाती थीं, जो अब भी खुदाईके बाद प्राप्त होती हैं। केवल विश्वमें हिन्दूधर्म ही एक ऐसा धर्म है, जो मरनेके बाद जीवकी मृतशरीरसे ही नहीं, बल्कि प्रेतयोनिसे भी मुक्ति दिला देनेकी वैज्ञानिक क्रियाएँ करके दिवंगत आत्माको परम शांति प्रदान करता है।

प्रेतयोनि एवं हिन्दू-क्रियाएँ

हिन्दूधर्मानुसार जीवको चौरासी लाख योनियोंमें भटकना पड़ता है। उनमें से एक प्रेतयोनि भी कुछ-एक पापकर्मोंके फलस्वरूप प्राप्त होती है। जलमें डूबकर मरनेवाला, अग्निमें जलकर मरनेवाला, वृक्षसे गिरकर मरनेवाला, आत्महत्या करनेवाला तथा अनशन द्वारा मरनेवाला आदि-आदि मनुष्य प्रेतयोनिमें जाते हैं। वहाँ भी मृतात्माओंके लिए वायु-प्रधान शरीर मिलता है। प्रेतोंके हृदयमें यह इच्छा सर्वदा बनी रहती है कि जहाँ उनका धन है, उनके शरीरके पार्थिव परमाणु हैं, उनके शरीरसम्बन्धी परिवार हैं, वहीं रहें, अपने सम्बन्धियोंको अपनी तरह बनायें। सभी भौतिक पदार्थोंका सञ्चय करनेकी सामर्थ्य वायुतत्त्वमें रहती है। यही कारण है कि प्रेत वायु-शरीरप्रधान होनेसे जिस योनिकी इच्छा करता है, वहीं साँप, बैल, भैंस, बकरी, छिपकली आदि-आदि शरीर ग्रहण कर लेता है किन्तु कुछ ही समयतक वह शरीर ठहर पाता है, पीछे सब पार्थिव परमाणु शीघ्र बिखर जाते हैं।

जिसका अन्त्येष्टि संस्कार हिन्दूशास्त्रविहित क्रियाओं से नहीं किया जाता, वह जीव कुछ समयके लिए प्रेतयोनि अवश्य प्राप्त करता है। शास्त्रोक्त विधिसे जब उसका प्रेत-संस्कार दशगात्र-विधान, षोडशश्राद्ध, सपिण्डन-विधान किया जाता है, तब वह प्रेतशरीरसे छूट जाता है। हिन्दुओंमें मरणोत्तर-क्रियाओंमें सबसे महत्त्वपूर्ण 'प्रेतयोनि' से मुक्तिके लिए ही अनेक क्रियाएँ की जाती हैं, जो संसारकी किसी भी अन्य जातिमें नहीं हैं।

श्राद्ध-क्रियाका रहस्य

श्राद्ध-क्रियाका रहस्य जाननेसे पूर्व हमें यह जान लेना परमावश्यक है कि हिन्दूसंस्कृतिके आधारस्तम्भ पवित्र वेदोंके अनुसार जीवोंको पुनर्जन्म प्राप्त होता है। वैदिकमतानुसार मृत्युके बाद आत्माके लिए दो मार्ग हैं: एक शुक्ल, दूसरा कृष्ण। शुक्लमार्ग आत्माका ईश्वरतत्त्वमें मिल जाना, अर्थात् मोक्ष है। वह जन्म-मृत्युके चक्रसे छूट जाता है। कृष्णमार्गके तीन भेद हैं: (१) मृत्युके बाद इन्द्रादि लोकोंकी प्राप्ति, बादमें पुनर्जन्म। (२) नरक-यातना और (३) पुनर्जन्म मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े या वृक्षादि किसी रूपमें।

इसीके साथ-साथ पितरोंके विषयमें भी थोड़ा बहुत जान लेना श्राद्ध-क्रियाके रहस्यके लिए आसान रहेगा।

वेदोंके अनुसार पितरोंकी दो श्रेणियाँ हैं: १. दिव्य-पितर तथा २. मनुष्य पितर। दिव्य पितर मुख्यरूपसे दो प्रकारके होते हैं: मुख्य दिव्य-पितर एवं प्रतिनिधि दिव्य-पितर। प्रतिनिधि दिव्य-पितरोंकी तीन शाखाएँ हैं: (१) देवताओंके पितर, साध्योंके पितर एवं गन्धर्व,

सर्प, राक्षस, यक्ष, किन्नर, सुपर्ण आदिके पितर। मनुष्य-पितरोंकी भी दो श्रेणियाँ हैं : प्रतिनिधि पितर और मुख्य पितर। प्रतिनिधि पितरोंकी चार श्रेणियाँ हैं : (१) ब्राह्मण, (२) क्षत्रिय, (३) वैश्य और (४) शूद्र।

इस प्रकार हम पितृमण्डलीके पितरोंका वर्णन कर देनेके बाद सामान्य पितरोंमें आ जाते हैं। सामान्य पितर अपने पूर्वपुरुषों, पिता-माता, दादा-दादी, नाना-नानी आदि और उनके दादा-दादी आदि मुख्य पितर हैं।

वैदिक आर्योंमें अपने पूर्वपुरुषोंके प्रति बड़ी श्रद्धा रही। जिन्होंने उन्हें जन्म दिया, उनके माता-पिताको जन्म दिया, इसी प्रकार क्रमशः पाला-पोसा, अनेक प्रकारसे उनके सुख-दुःखोंका ध्यान रखा, इन बातोंसे मनुष्य अपनेको उनका ऋणी मानता है। वेदोंके अनुसार मनुष्यपर तीन ऋण माने गये हैं : (१) देव-ऋण (प्राकृतिक देवताओंकी उपासना, जिनके कारण वह जीवन बितानेमें समर्थ हो सका)। (२) पितृ-ऋण (पितरों—माता-पिता) की सेवा, और बादमें भी पितृयज्ञादि करना, और सन्तानोत्पादन करना—जिससे पितृयज्ञका क्रम चालू रहे) और (३) मनुष्य-ऋण (मनुष्य मात्रमें ईश्वरकी भावना रखकर समाज-सेवा, और परस्पर सेवा, सहयोग आदि करना)

चूँकि यह तो जानना बड़ा ही कठिन कार्य है कि मरनेके बाद पितरों (माता-पितादि) को कौन-सी योनि प्राप्त होती है—शुक्ल या कृष्ण मार्ग द्वारा वे किस स्थानपर पहुँचते हैं, अतः पितृभक्त हिन्दू सन्तानको सदैव यह चिन्ता बनी रहती है कि मेरे पितरोंको कहीं नारकीय यातनाएँ तो नहीं मिल रही हैं ? कहीं वे नीच योनिमें तो नहीं प्राप्त हो गये हैं। अतः वैदिक हिन्दू यह कामना करता है :

उदीरतावर उत्परास उत्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृकाऋतज्ञास्तेनोऽवन्तु पितरो हवेषु॥ (यजुर्वेद १९.४९)

अर्थात् पितरो, आप क्रमशः उन्नति करो, अर्थात् नीच योनिसे उन्नत योनियोंको प्राप्त होओ और जो स्वयं उन्नत योनियों में हैं वे और उन्नत जीवन प्राप्त करें।

पितरसम्बन्धी इस सामान्य ज्ञानके पश्चात् अब हम अपने मुख्य विषय श्राद्ध-क्रियाकी ओर आयें। 'श्रद्धा' शब्दसे श्राद्धकी उत्पत्ति हुई है : श्रद्धार्थमिदं श्राद्धम्। 'महर्षि मरीचिने श्राद्धका लक्षण इस प्रकार बताया है : "मृत पितरोंके निमित्त अपनेको प्रिय भोजन जिसमें श्रद्धायुक्त होकर दिया जाय, उसे श्राद्ध कहते हैं"—

प्रेतान् पितॄनप्युद्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः।
श्रद्धया दीयते यत्तु तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्॥

इसी प्रकार महर्षि पराशर, बृहस्पति एवं वेदव्यासने अलग-अलग अर्थ श्राद्धके किये हैं, किन्तु अभिप्रायः सबका एक ही है।

हिन्दू-धर्मग्रन्थोंमें श्राद्ध भी कई प्रकारके कहे गये हैं। इनमें मुख्य तीन प्रकारके श्राद्ध हैं :

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्राद्धमुच्यते।

अर्थात् नित्य (प्रतिदिन किये जानेवाले), नैमित्तिक (एकोद्दिष्ट प्रभृति श्राद्ध) एवं काम्य (स्वाभिलषित कार्यसिद्ध्यर्थ किये जानेवाले श्राद्ध)

दूसरे शब्दोंमें 'पितृयज्ञ'का दूसरा नाम ही श्राद्ध है। पितृयज्ञका अर्थ है, माता-पितादि पारिवारिक मनुष्योंकी मृत्युके बाद उनकी तृप्तिके लिए श्रद्धापूर्वक किये जानेवाले पिण्डोदकादि समस्त कार्य।

वैदिक-मतानुसार पितृपक्ष (आश्विन कृष्णपक्ष) में पितरोंका विशेष सम्बन्ध रहता है। अतः हिन्दुओंमें इस पितृपक्षमें जिसे 'श्राद्ध' या 'कनागत' भी कहते हैं श्राद्ध करनेका विशेष माहात्म्य है। महाभारतके अनुशासनपर्व (८७.९-१७) में प्रतिपदासे लेकर अमावास्यातक प्रत्येक तिथिमें श्राद्ध करनेका अलग-अलग फल युधिष्ठिरसे पितामह भीष्मने बताया है।

'ब्रह्मपुराण' में भी नित्य श्राद्धकी महिमा लिखी है। वास्तवमें पितृ-ऋणसे मुक्त होनेका एकमात्र साधन श्राद्धक्रिया ही है। महर्षि व्यासने लिखा है :

पितॄन् पितामहांश्चैव द्विजः श्राद्धेन तर्पयेत।
आनृण्यं स्यात् पितॄणां च ब्रह्मलोकं च गच्छति॥

अधिक न सही, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि हिन्दुओंमें श्राद्धकी क्रियासे हमें अपने पूर्वजोंकी स्मृति बनी रहती है तथा दिवंगत आत्माओंकी शांतिके लिए प्रभुसे प्रार्थना करनेका अवसर मिलता है। अनपढ़ एवं मूर्ख व्यक्ति भी यह जानता है कि आज उसकी माताका श्राद्ध है और कल उसके परदादाका श्राद्ध है।

इसी बातको देखते हुए मुगलसम्राट् शाहजहाँने अपने पिताद्रोही पुत्र औरङ्गजेबको एक पत्रमें हिन्दुओंकी मरणोत्तर क्रियाओंकी प्रशंसा करते हुए लिखा था :

ऐ पिसर तू अजब मुसलमानी,
व पिदरे जिन्दा आब तरसानी।
आफरीन बाद हिन्दवान सदबार,
मैं देहंद पिदरे मुर्दारावा दायम आब॥—वाकेआत आलमगीरी

'हे पुत्र ! तू भी विचित्र मुसलमान है जो अपने जीवित पिताको जलके लिए भी तरसा रहा है। शत-शत बार प्रशंसनीय हैं वे हिन्दू, जो अपने मृत पिताको भी जल देते हैं।'

इस प्रकार सिद्ध होता है कि हिन्दुओंमें मरणोत्तर-क्रियाओंका महान् रहस्य है, जिसे हम यदि ध्यानपूर्वक विचारें तो समझा या जाना जा सकता है। हिन्दुओंमें कोई भी मरणोत्तर क्रिया निराधार या मनगढ़न्त नहीं है। प्रत्येक क्रिया वैदिकमतानुसार है और परम रहस्य-युक्त है। आज वेदोंको आविर्भूत हुए कई लाख वर्ष बीत गये हैं; किन्तु वेदोक्त इन क्रियाओंको संसारका कोई भी व्यक्ति सारहीन सिद्ध नहीं कर सका।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।—(यजुर्वेद ४०.२)



नैया मझधारा में उलझी, हे कृष्ण कन्हैया लो उबार।
आवो भारतके कर्णधार!

१.

चीनासुर जबड़े चाट रहा,
पाकासुर खींच सपाट रहा।
आक्रान्त आसुरी सेना से—
हर घाट रहा, हर बाट रहा।
वह पांचजन्य हुँकार उठे
फिर पार्थसारथे एकबार!

२.

हो रही विकट बरिआई है,
लाखों ने जान गँवाई है।
वे पाण्डव द्रौपद्रियां असंख्य—
शरणागत बनकर आई है।
इनको अधिकार दिलाने को
चमकाओ फिरसे चक्रधार!

३.

फिर गांडीव टंकार उठे,
दम्भोलि दानवोंपर छूटे।
उठ जाय भीम की भीम गदा,
दुर्योधन की जांघें टूटें।
दम्भी दुःशासनके डरसे
वह चले रक्त की प्रखर धार!

आ
वो
भा
र
त
के
क
र्ण
धा
र

४.

चाहे शल यातो शल आये,
बच्चे-बच्चे में बल आये।
अरि-चक्रव्यूह के भेदन को—
अनगिन अभिमन्यु निकल आयें।
रोयें रणशय्यापर सोये
वैरी करते हा-हा पुकार!

५.

गिरधर! अब तुम न रहे बालक
हे केशि-कंस-कुलके घातक।
तुम महासमरके संचालक,
तुम तीन लोकके प्रतिपालक।
कर कालयवनको भस्म फेंक
दो जरासंधको चीर-चार।

यह देश न फिरसे आरत हो,
भारत संतत प्रतिभा-रत हो।
सद्‌गुण सद्‌गुरु-सेवा-रत हो,
अविजत अनवद्य अनारत हो।।
घर-घर गरुडध्वज फहराये,
मिट जाय भूमिका भूरि-भार!

'राम'

आवो भारतके कर्णधार!

भारतीय राजनीतिमें प्रजातन्त्र

पद्मभूषण, पण्डितराज
श्री राजेश्वर शास्त्री द्राविड

★

भारतीय राजनीतिके सिद्धान्तानुसार 'प्रजातन्त्र' का 'प्रतिनिधि' राजा होता है। अतः उसे प्रजातन्त्रकी प्रजासे भिन्न नहीं समझा जा सकता। प्रजाका सर्वविध धर्मसम्मत रक्षण करना राजाका धर्म है

सृष्टिकी रचनाके साथ प्रजापति ब्रह्माने समस्त प्रजाके रक्षण-पालनका भार ब्राह्मण और राजा (क्षत्रिय) पर सौंपा। 'पशु'वर्गका रक्षण-पालन वैश्योंको सौंपा। इस प्रकार उन्होंने सृष्टि चलानेकी धर्मसम्मत व्यवस्था की। इस व्यवस्थामें जो भी अपना कर्तव्य कर्म नहीं करेगा, उसे दोषका भागी बनना पड़ेगा। ब्राह्मणके लिए सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्त तकके कर्मोंका विधान बताया गया है, जिनमें अध्ययनाध्यापन, अनुष्ठान आदि प्रमुख हैं।

'अहिंसा' और 'दया' सामान्य धर्म होनेसे सबके लिए सर्वसाधारण धर्म माने जाते हैं। यदि न्यायालयमें राजाके साथ ब्राह्मण जाता है तो प्रश्न उठता है कि ब्राह्मण अपने धर्मको न करते हुए वहाँ गया, अतः उसे धर्मके अतिक्रमणका दोष होगा या नहीं? यहाँ विचार इतना ही करना होगा कि वह किस हेतु वहाँ गया? यदि वह किसी निरपराध अपराधीके साक्ष्यमें गया हो, तो उसे अपने धर्मके अतिक्रमणका दोषको नहीं कहा जा सकता। अपराधी निरपराध जानते हुए भी अपना साक्ष्य न देकर वह मात्र सन्ध्यादि स्वकर्ममें ही लगा रहता है तो अहिंसा-धर्मके अतिक्रमणका दोषी माना जायगा।

प्रजापति द्वारा प्रतिपादित सर्वमान्य सिद्धान्त वर्णाश्रमधर्मके अनुसार हमारा मुख्य ध्येय प्रजा-परिपालन है। इसीलिए महाभारतमें कहा गया है कि विष्णुने जो स्थिति बतायी, वही धर्म भारतीय राजनीति है। शेष धर्म उन्हींके अंगमात्र है। शास्त्रमें कहा गया है :

क्षात्रोधर्मः स्यादिदेवात्प्रवृत्तः पश्चाजन्ये शेषभूताश्च धर्माः।

इसी वचनको प्रमाण मानकर चलना चाहिए। यदि वैश्य पशुपालनमें लगा हो तो उसे अन्यकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार क्षत्रिय प्रजापालनमें लगा रहे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसे दोष होगा। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय कि राजाका शासन नष्ट हो रहा हो, तो सबका कर्तव्य हो जाता है कि प्रजाकी रक्षा करें।

प्रजातन्त्रका प्रतिनिधि होकर यथाशास्त्र अभिषिक्त 'राजा' प्रजातन्त्रका पालन करता था। प्रत्येकको 'वैश्वदेव'-कर्म भोजनसे पूर्व करना आवश्यक है, तभी बात बनती है। किन्तु ऐसा न कर यदि घरमें सबसे बड़ेने वह कर्म कर लिया, तो परिवारके सभी सदस्योंको उससे मुक्ति मिल जाती है, उन्हें न करनेका दोष नहीं लगता। राजाका मुख्य धर्म होता है, प्रजाकी हर तरहसे जीवन-रक्षा करना। तभी सब निश्चिन्त होकर अपने-अपने धर्म-कर्ममें लगे रहते हैं।

आजकल वृत्तिके सभी अंग क्लेशमें हैं और चारों ओर अहिंसाके स्थानपर हिंसाका प्राबल्य बढ़ता जा रहा है। भारत ही नहीं, सारे विश्वमें यही स्थिति है। इसका समाधान केवल भारतीय राजनीतिमें हैं, अन्य किसी पाश्चात्त्य राजनीतिमें नहीं। भारतीय राजनीति हमें एकसूत्र एवं एक-संकल्पसे बद्ध रहनेका उपदेश देती है। वह सूत्र एवं संकल्प है: विवेक, श्रुति-सम्पत्ति, गुरुभक्ति, तपस्विता। इन्हींके द्वारा सबका कल्याण सम्भव है, अन्य कोई उपाय नहीं।

उक्त वृत्तिका उपाय न होनेपर लोगोंके लिए नास्तिक उपाय 'नौकरी' शेष रह गया है। परिणाम यह हो रहा है कि जिसे हमारी भारतीय राजनीति हेय कर्म मानती है, उसे अपनाने-पर सभी लोगोंको नौकरी तो मिलती नहीं, बल्कि सब दीनसे बेदीन, चरित्रहीन, अनुशासन-हीन बनते जाते हैं। कहा गया है: **उत्तम खेती मध्यम बान, अधम चाकरी**। इस प्रकार लोग अधम चाकरीका कर्म कर अधम मनोवृत्तिके बनते जा रहे हैं।

इन दोषोंपर ध्यान न देकर आज यह कहा जाता है कि पूंजीपति-वर्ग शोषण करता है। इस सम्बन्धमें अमेरिकाके 'राकफेलर'का उदाहरण पर्याप्त है। वे अरबपति थे। एक समय उनके यहाँ एक व्यक्ति पिस्तौल लेकर उन्हें मारने गया। वे बड़े चतुर थे, मारनेका कारण पूछा। उसने कहा: 'आपने इतनी पूंजी एकत्र कर रखी है, इसीलिए मार रहा हूँ।' मारनेवाला अविवेकी था, राकफेलरने विवेकसे काम किया। उससे पूछा: 'विश्वमें यदि मैं सबसे बड़ा पूंजीपति हूँ तो हम सब धन बाँटनेको तैयार हैं।' विश्वकी जनसंख्या और उसके सारे धनकी मात्राको देखते हुए प्रतिव्यक्ति 'चार आना' हिस्सेमें पड़ता था। राकफेलरने उससे कहा: 'तुम अपना हिस्सा यह चार आना ले लो। तुम्हारा भाग दे दिया, अतः अब हमें मारनेका कोई कारण नहीं। जो लोग आयेंगे, उनका भाग उन्हें दूँगा। मारनेवाला निरुत्तर हो गया!

यदि पूंजी किसी पूंजीपतिके पास रहती है, तो वह उसका संचरण करता रहता है। उसके अनुसार सबको क्रमशः अपने-अपने कर्मानुसार धनका भाग मिलता रहता है। धनका संचरण होनेसे ही राष्ट्र सबल बन पाता है, जिस प्रकार शरीरमें रक्त-संचार होते रहनेसे शरीर स्वस्थ बना रहता है।

कोई विवेकी किसीकी हिंसामें प्रवृत्त नहीं होता। आज नित्य दस-बीस निरपराधोंकी हत्या हो रही है। चारों ओर अशान्तिका वातावरण व्याप्त है। इस स्थितिके निवारणमें भारतकी प्राचीन राजनीति ही सक्षम है। इसमें वह शक्ति है, जिसके द्वारा सभी जीव और प्रकृति एक-दूसरे-का पालन करते हुए संघटित रहते हैं। 'नास्तिक-नीति' भेद-नीतिकी परिचायक है। इस प्रकार हमें अपने जीवनके प्रत्येक अंगसे 'भेद-नीति' को निकालकर सत्य और अहिंसाकी नीति अर्थात् 'भारतीय राजनीति'को अपनाना चाहिए। ●

एक ऐतिहासिक विश्लेषण

धर्मोपासना और भक्तिके क्षेत्रमें राधाजीकी प्रतिष्ठा

श्री प्रभुदयाल मीतल



: १ :

भारतीय धर्म, उपासना और भक्तिके क्षेत्रमें भगवान् कृष्णके साथ भगवती राधाका ऐसा अन्योन्य सम्बन्ध है कि एकके बिना दूसरेकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। किन्तु जब हम इस विषयपर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करते हैं, तब ज्ञात होता है कि राधाजीके अस्तित्व और धार्मिक क्षेत्रमें उनकी प्रतिष्ठाकी परम्परा उतनी प्राचीन नहीं है, जितनी श्रीकृष्णकी है। श्रीकृष्णका अस्तित्व पाँच हजार वर्ष पुराना माना जाता है। यह भी उल्लेख मिलता है कि उनके जीवन-कालमें ही उन्हें उपास्य मान लिया गया था। किन्तु श्री राधाका अस्तित्व दो हजार वर्षसे पूर्वका ज्ञात नहीं होता। धर्मोपासनामें उनकी प्रतिष्ठा तो और भी बादकी सिद्ध होती है। यह एक ऐसी पहेली है, जिसे सुलझानेमें बहुसंख्यक विद्वान् अनेक वर्षोंसे लगे हैं, यद्यपि राधा-कृष्णोपासक भावुक भक्तोंके मन और मस्तिष्कपर इसका कोई प्रभाव नहीं है।

अबतकके अनुसंधानसे ज्ञात होता है कि राधाके अस्तित्वका सबसे प्राचीन उल्लेख प्राकृत भाषाकी 'गाहा-सत्तसई' नामक लोक-काव्यकी रचनामें मिलता है। अन्तःसाक्ष्यसे स्पष्ट है कि अबसे प्रायः दो हजार वर्ष पूर्व प्रतिष्ठानपुरके राजा हाल सातवाहनने अपने समयकी श्रृंगार-रसपूर्ण प्राकृत गाथाओंका संकलन 'गाहा-सत्तसई'के नामसे कराया था। इस प्रकार राधा-कृष्णकी प्रेम-लीलाओंका प्रथम उल्लेख लोक-साहित्यमें मिला है, जो अधिकसे अधिक दो हजार वर्ष पुराना है। इसके उपरांत ५वीं शतीमें निर्मित लोक-साहित्यके दूसरे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पञ्चतन्त्र'में राधा-कृष्णकी प्रेम-लीलाका कथन है। इन उल्लेखोंसे ज्ञात होता है कि पाँचवीं शताब्दी तक भारतके लोक-जीवनमें राधा-कृष्णकी प्रेम-लीलाएँ व्यापक रूपसे प्रचलित थीं। प्राकृत भाषाके लोक-काव्यकी परम्पराका निर्वाह अपभ्रंश भाषा-काव्योंमें किया गया। फलतः हेमचन्द्र, पुष्पदन्त आदि अपभ्रंश-कवियोंने राधा-कृष्णकी प्रेम-लीलाओंका पर्याप्त वर्णन किया है।

प्राकृत रचनाओंके उपरान्त, किन्तु अपभ्रंश-रचनाओंके साथ ही साथ संस्कृतके काव्य-नाटकादिमें भी राधा-कृष्णकी लीलाओंने स्थान प्राप्त कर लिया था। ८वीं शताब्दीके कविवर भट्टनारायणने अपने 'वेणीसंहार' नाटकके मंगलाचरणमें केलि-कुपिता राधासे अनुनय-विनय करनेवाले श्रीकृष्णकी वन्दना की है। १०वीं शतीके काश्मीरी साहित्य-समीक्षक आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा संपादित 'ध्वन्यालोक'में किसी पूर्ववर्ती कविके दो पुराने श्लोक उद्धृत किये गये हैं। उनमें राधा-कृष्णकी प्रेम-लीलाका सरस वर्णन हुआ है। १०वीं शतीकी कई अन्य रचनाओंमें, जैसे नलचम्पू, शिशुपाल-वध-टीका, यशस्तिलक-चम्पू, कवीन्द्र-वचन-समुच्चय आदिमें भी राधा-कृष्णकी लीलाओंका उल्लेख मिलता है। इसके उपरान्त धनंजयके दशरूपक, भोजके सरस्वती-कण्ठाभरण, क्षेमेन्द्रके दशावतार-चरित्र, श्रीधरदास द्वारा संकलित सदुक्ति-कर्णामृत आदि अनेक रचनाओंमें राधा-कृष्णकी प्रेम-लीलाओंका वर्णन हुआ है। १२वीं शतीके पश्चात्के संस्कृत-साहित्यमें तो राधाका उल्लेख और भी विस्तारसे किया गया है।

१३वीं शतीके आरम्भिक कालमें संस्कृत-भाषाके दो भक्त-कवि जयदेव और बिल्वमंगलने अपने सुप्रसिद्ध गीत-काव्य 'गीतगोविन्द' और 'कृष्ण-कर्णामृत'में राधा-कृष्णकी प्रेम-लीलाओंका माधुर्य-भक्तिपूर्ण गायन किया था। जयदेव गौड़ (बंगाल)के राजा लक्ष्मणसेनके दरबारी कवि थे। इस प्रकार वे सं० १२२५ के लगभग विद्यमान थे। प्राय: वही काल बिल्वमंगलका भी है। उन दोनोंकी रचनाओंसे सिद्ध होता है कि १३वीं शतीतक राधाका महत्त्व धार्मिक-क्षेत्रमें स्वीकृत हो चुका था। जयदेव और बिल्वमंगल दोनोंकी रचनाएँ कृष्णोपासक भक्ति-संप्रदायमें धर्म-ग्रन्थोंके रूपमें मान्य रही हैं। जयदेवका इस दृष्टिसे बड़ा महत्त्व है कि उन्होंने साहित्यकी राधाको धर्मके साथ समन्वित कर दिया। उन्होंने अपने काव्य-प्रेमियोंसे स्पष्टतया कहा है, यदि विलास-कलाके साथ हरि-स्मरण करनेका मन हो, तो उनकी कोमल-कांत पदावलीका श्रवण करना चहिए :

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्॥

इस प्रकार 'गीतगोविन्द' काव्य-कलाको धर्मोपासनाके साथ जोड़नेवाली एक सुदृढ़ कड़ी सिद्ध हुआ है।

भक्ति-तत्त्वके उद्भव और आरम्भिक विकासका श्रेय उत्तरकी अपेक्षा दक्षिण भारतको दिया जाता है। दक्षिणके आलवार भक्तगण माधुर्य-भक्तिके आदिम प्रचारक थे। वे निम्न जातियोंके भक्तजन थे, जो ५वीं से ९वीं शती तकके विभिन्न कालोंमें हुए। उन्होंने तमिल भाषामें शृंगार-भक्तिके पदोंकी रचना की थी। राधाजीका तमिल नाम 'नाप्पन्नाई' मिलता है। आलवार भक्तोंने कृष्ण और नाप्पन्नाईकी माधुर्य-भक्तिके जो मनोरम गीत गाये हैं, वे तमिल-भाषाके प्राचीन साहित्यमें अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

धर्मोपासनामें राधाकी प्रतिष्ठाका सर्वाधिक श्रेय संस्कृतके पुराण-वाङ्मयको है। पुराणोंमें हरिवंश और विष्णुपुराण अधिक प्राचीन हैं, किन्तु उनमें राधाका उल्लेख नहीं है।

श्रीमद्भागवत कृष्णकी व्रज-लीलाओं तथा गोप-गोपियोंके साथ उनकी बाल-क्रीड़ाओंका सर्वप्रधान आकर-ग्रन्थ है, किन्तु उसमें भी राधाका स्पष्टतया उल्लेख नहीं है। एक स्थलपर 'आराधितः' शब्द आया है, जिसे विद्वानोंने राधाका द्योतक समझ लिया है। एक अन्य स्थलपर 'राधसा' शब्द भी आया है, जिसका सामान्य अर्थ 'ऐश्वर्य' या 'विभूति' होता है। किन्तु राधाकी महत्ताके अत्यन्त आग्रही विद्वानोंने उसे भी राधासे सम्बद्ध मान लिया है। व्रजके कृष्णोपासक धर्माचार्यों और भक्त महानुभावोंने—विशेषतया गौड़ीय गोस्वामियोंने पुराणादि ग्रन्थोंका मंथन कर उनमेंसे राधा-तत्त्वका नवनीत प्राप्त करनेमें अत्यन्त परिश्रम-साध्य सत्प्रयास किया। उन्हें मत्स्य, पद्म और देवी-भागवतादि कई पुराणोंमें तो राधासम्बन्धी उल्लेख मिल गये, किन्तु श्रीमद्भागवतमें राधाका स्पष्ट उल्लेख न मिलनेसे उन्हें निराशा हुई। किन्तु आत्म-संतोषके लिए उन्होंने मान लिया कि भागवतकारने जान-बूझकर ही राधाके नामको गुप्त रखा है। उसका सांकेतिक रूपमें उल्लेख करना ही उन्हें इष्ट था। सर्वश्री सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी, कृष्णदास कविराज, विश्वनाथ चक्रवर्ती आदि सभी गौड़ीय विद्वानोंने अपने-अपने ग्रन्थोंमें विविध युक्तियों और तर्कोंसे इसी प्रकारके समाधान प्रस्तुत किये हैं।

जिन पुराणोंमें श्री राधाजी का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, उनमें मत्स्य, पद्म, वायु, वराह, स्कन्द, भविष्य और नारद नामक पुराण उल्लेखनीय हैं। किन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उक्त पुराणोंके राधा-विषयक कथन उसी कालके हैं, जब कि उनकी रचना हुई थी अथवा उन्हें बादमें बढ़ाया गया है। विद्वानोंके मतानुसार उनमेंसे पर्याप्त उल्लेख प्रक्षिप्त हैं। राधाकी महत्ता और उनकी लीलाओंका सर्वाधिक वर्णन जिस पुराणमें हुआ है, वह ब्रह्मवैवर्त है। बल्कि यह कहना उचित होगा कि अकेले इसी पुराणमें राधासम्बन्धी जितनी सामग्री है, उतनी संस्कृतके समस्त प्राचीन वाङ्मयमें एकत्र कहीं भी नहीं है। इसीलिए इसे 'राधा-पुराण' भी कहा जा सकता है। किन्तु इसके वर्तमान रूपकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। मत्स्य और नारद पुराणोंमें ब्रह्मवैवर्तका जो आकार-प्रकार बतलाया गया है, उससे इसके प्रस्तुत रूपकी संगति नहीं बैठती। इसकी पुष्टि गौड़ीय गोस्वामियोंके ग्रंथोंसे भी होती है, जिनमें ब्रह्मवैवर्तके राधासम्बन्धी उद्धरण नहीं लिये गये हैं। यदि गोस्वामियोंके काल (१६ वीं शती) में यह पुराण आजकलके-से रूपमें ही उपलब्ध होता, तो वे निश्चय ही इसके राधासम्बन्धी उल्लेखोंको अपने ग्रन्थोंमें उद्धृत करते। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मवैवर्तका वर्तमान रूप गौड़ीय गोस्वामियोंके बादका है।

ब्रह्मवैवर्तके कई श्लोकों और जयदेवकृत 'गीत-गोविन्द'के पदोंमें बड़ा साम्य है। इस पुराणके 'श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड' अध्याय १५ के आरंभिक ७ श्लोकोंमें राधा-कृष्णके मिलनकी जो अलौकिक कथा है, उसीके जैसा भाव 'गीत-गोविन्द'के मंगलाचरणके पदमें भी मिलता है। अभीतक यह निश्चय नहीं किया जा सका है कि गीत-गोविन्दका उक्त कथन ब्रह्मवैवर्तकी कथाके आधारपर किया गया है अथवा गीत-गोविन्दके आधारपर ही ब्रह्मवैवर्तमें वह कथा लिखी गयी है।

जिन पुराणेतर ग्रन्थोंमें राधाका उल्लेख मिलता है, उनमें ब्रह्मसंहिता, गर्ग-संहिता विविध तान्त्रिक ग्रन्थ, तथा राधिकोपनिषद्, गोपालोत्तरतापनी उपनिषद् और राधिका तापनी-उपनिषद् उल्लेखनीय हैं। इनमें से 'ब्रह्मसंहिता' १६वीं शतीसे पहलेकी रचना है, किन्तु उसका प्रचार दक्षिण भारतमें ही था। जब चैतन्यदेव अपनी दक्षिण-यात्राके लिए गये थे, तब उन्होंने वहाँ इसकी प्रतिलिपि करायी थी। उसके बाद ही उत्तर भारतमें इस ग्रन्थका प्रचार हुआ। 'गर्ग-संहिता' एक बड़ा ग्रन्थ है, जिसमें कृष्णके साथ राधाका भी विशद वर्णन हुआ है। इसपर ब्रह्मवैवर्तका पर्याप्त प्रभाव है, और यह १६वीं शतीके पश्चात्‌की रचना है। तान्त्रिक ग्रन्थोंमें 'राधा-तन्त्र' प्रमुख है। इसके अतिरिक्त रुद्रयामल तन्त्र, गौतमीय तन्त्र आदि हैं, जो सभी अर्वाचीन रचनाएँ हैं। इनमें राधाकी महिमा तान्त्रिक दृष्टिकोणसे वर्णित है। राधा और कृष्णके नामसे जो अनेक उपनिषदें रची गयी हैं, उनमें से कोई भी १६वीं शतीसे पहलेकी नहीं है, कुछ तो और भी बादकी हैं। इनमें राधाके महत्त्वकी दृष्टिसे 'राधिकोपनिषद्' विशेष रूपसे उल्लेखनीय है।

पूर्वोक्त विवेचनसे स्पष्ट होता है कि जिन साहित्यिक और पौराणिक रचनाओंने राधाके धार्मिक महत्त्वकी पृष्ठभूमिका निर्माण किया है, उनमें 'गीत-गोविन्द' और 'ब्रह्मवैवर्त' का सर्वाधिक योग है। इनके राधासम्बन्धी कथनकी समान भावनाका उल्लेख पहले किया जा चुका है। उसके कारण ये विवादके प्रश्न बन गये हैं कि इन दोनों ग्रन्थोंमें से किसकी रचना पहले हुई और किसकी बादमें, फिर दोनोंमें से किसके कथनका किसपर प्रभाव पड़ा है? इन प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर देना बड़ा कठिन है।

रसिकराज जयदेवने चाहे ब्रह्मवैवर्तसे प्रभावित होकर ही 'गीत-गोविन्द' की रचना की हो, फिर भी राधा-कृष्णकी सरस वृन्दावन-लीलाओंके सर्वप्रथम गायक होनेका श्रेय सदासे इन्हींको दिया जाता रहा है। सर्वश्री सनातन, रूप गोस्वामियोंके समकालीन वृन्दावनके अनेक भक्त-कवियोंने उनके इस महत्त्वको स्वीकार किया है। जयदेवके समकालीन भक्त-कवि बिल्वमंगल और उनकी सरस रचना 'कृष्ण-कर्णामृत' का उल्लेख पहले किया जा चुका है। जयदेवकृत 'गीत-गोविन्द' अपनी सरस रचना-शैलीके कारण १३वीं शताब्दीसे ही उत्तर भारतके विस्तृत क्षेत्रमें और संभवतः दक्षिणमें भी बराबर प्रचलित रहा है। उसने विविध क्षेत्रीय भाषाओंमें रची राधा-कृष्णकी प्रेम-लीलाओंको प्रभावितकर उनके द्वारा राधा-वादके व्यापक प्रचारमें महत्त्वपूर्ण योग दिया है। उसके साथ ही ब्रह्मवैवर्तकी धार्मिक महत्ताके योगने उसके प्रभावको और भी बढ़ा दिया है।

व्रजके कृष्णोपासक धर्माचार्योंने राधा-तत्त्वकी प्रतिष्ठाकर भक्तिके क्षेत्रमें युगान्तर उपस्थित कर दिया। श्री निम्बार्काचार्यजीके सम्प्रदायमें राधा-कृष्णके युगलस्वरूपकी उपासना प्रचलित हुई। इस सम्प्रदायकी 'दशश्लोकी' नामक रचनाके सुप्रसिद्ध स्तोत्रमें राधाजीके महत्तम रूपका इस प्रकार कथन एवं स्मरण किया गया है :

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

निम्बार्क-संप्रदायके परमाराध्य और परमोपास्य युगलस्वरूप श्री राधा-कृष्ण हैं। श्रीकृष्ण सर्वेश्वर हैं, तो राधा सर्वेश्वरी। श्रीकृष्ण आनंदस्वरूप हैं, तो राधा आह्लादस्वरूपिणी। राधाका स्वरूप कृष्णके सर्वथा अनुरूप (अनुरूपसौभगा) माना गया है। इस सम्प्रदायमें राधा-कृष्णकी युगल-मूर्तिके प्रतीक सर्वेश्वर शालग्रामकी प्रमुख रूपसे सेवा-पूजा होती है।

निम्बार्क-संप्रदायकी गुरु-परंपराके ३४वें आचार्य श्री भट्टजी इस सम्प्रदायके प्रथम वाणीकार थे। उनकी सरस व्रजभाषा रचना 'जुगल-शतक' में श्री राधा-कृष्णके नित्य-विहारके साथ उनकी समान स्थितिका भी तात्त्विक विवेचन किया गया है। श्री भट्टजीका कथन है : 'जिस प्रकार दर्पणमें मुख और नेत्रोंमें नेत्र प्रतिबिम्बित होते हैं, उसी प्रकार प्रिया-प्रिय श्री राधा-कृष्ण भी एक दूसरेसे कभी अलग नहीं होते। श्री भट्टजीके यशस्वी शिष्य हरिव्यासदेव-कृत 'महावानी' में राधा-कृष्णके युगल-विहारका अत्यंत मनोरम और भव्य वर्णन किया गया है। इसमें निम्बार्क-सम्प्रदायकी भावनाके अनुसार राधा-कृष्णकी अभिन्नताके द्योतक जो अनेक सरस कथन मिलते हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

कृष्णरूप श्रीराधिका, राधारूप श्रीस्याम।
दरसन कौं ए दोय हैं, हैं एकहि सुख-धाम॥
सदा-सर्वदा जुगल-इक, एक जुगल तन धाम।
आनंद अरु आह्लाद मिलि, बिलसत हैं द्वै नाम॥

× × ×

एक स्वरूप सदा द्वै नाम!
आनँदके आह्लादिनि स्यामा, आह्लादिनिके आनँद स्याम॥
सदा-सर्वदा जुगल-एक तन, एक-जुगल तन बिलसत धाम।
'श्री हरिप्रिया' निरंतर नितप्रति, कामरूप अद्भुत अभिराम॥

माध्व-संप्रदायके प्रवर्तक श्री मध्वाचार्यजीने राधाजीकी उपासनाका उपदेश नहीं दिया। उनकी शिष्य-परंपरामें श्री माधवेन्द्रपुरी नामक एक प्रकाण्ड विद्वान् और परमभक्त संन्यासी हुए हैं। उन्हें इस सम्प्रदायमें 'राधा-तत्त्व'का प्रवर्तक माना जाता है। उनके पश्चात् ही माध्व-सम्प्रदायमें 'राधा-भाव'को मान्यता प्राप्त हुई। श्री माधवेन्द्र पुरीके शिष्य श्री ईश्वरपुरी हुए, उनके शिष्य श्री चैतन्य महाप्रभु थे। जयदेवकृत 'गीत-गोविन्द'के प्रचारसे बंगाल-उड़ीसाके शक्तिवादसे प्रभावित प्रदेशोंमें 'राधा-वाद'का जो अंकुर जमा था, उसे सर्वश्री माधवेन्द्र पुरीने सींचकर पल्लवित किया। बादमें 'राधावाद'का वही पौधा श्री चैतन्यदेवके कालमें लहलहाता हुआ वृक्ष बन गया। श्री चैतन्य महाप्रभु 'राधावाद'के प्रमुख प्रचारक होनेके साथ ही स्वयं भी राधाभावके मूर्तिमान् स्वरूप थे। चैतन्य-सम्प्रदायमें उन्हें राधा-कृष्णका सम्मिलित अवतार माना जाता है। (सावशेष)

●

श्रीकृष्णका जन्माब्द और जन्मकुण्डली

श्री दीवान रामचन्द्र कपूर

★

हिन्दुओंके दो प्रमुख उपास्यदेव श्रीराम और श्रीकृष्ण हैं। करोड़ों नर-नारी इनकी उपासना ईश्वरके रूपमें करते हैं। इन युगप्रवर्तक अवतारोंके पीछे उनका इतिहास है, जिसके अनुसार श्री रामचन्द्रका जन्म त्रेतायुगमें तथा श्री कृष्णका द्वापरमें माना जाता है। श्री कृष्ण-चन्द्र महाभारतके नायक हैं, पर महाभारतमें कहीं भी उनके जन्मकालके अब्दका उल्लेख नहीं और न कहीं उनके जन्मकालीन ग्रहोंका ही। जन्मकालकी तिथि और नक्षत्रकी चर्चा तो अनेक ग्रन्थोंमें है। इसलिए भगवान् कृष्णके जन्मकालका निर्णय करना तथा तदनुसार उनकी कुंडलीका निर्माण करना भगीरथ-प्रयत्न है। अवश्य ही उनकी जन्मकालीन घटनाओं तथा प्रासंगिक घटनाओंके आधारपर उनकी कुण्डलीका निर्माण किया जा सकता है; फिर भी यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि ऐसी जन्मकुण्डली यथार्थतः उनकी जन्मकालिक कुण्डली ही है।

भारतमें खमाणिक्य नामके एक विद्वान् ज्योतिषी हो गये है, जिन्होंने श्रीकृष्णके जन्म-कालीन ग्रहोंको स्पष्ट कर उनकी कुण्डलीका निर्माण किया है। दूसरा प्रयास सूरदासके पदोंका है, जो 'चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता' नामक ग्रन्थमें है।

खमाणिक्य लिखते हैं :

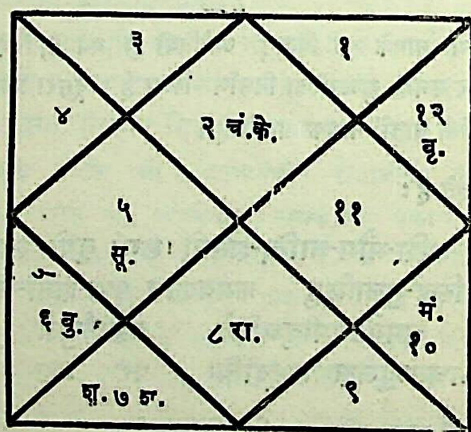
उच्चस्थाः शशि-भौम-चान्द्रि-शनयो लग्नं वृषो लाभगो
जीवः सिंह-तुलालिषु क्रमवशात् पूषा शनी-राहुकः।
नैशीथे समयेऽष्टमीबुधदिने ब्रह्मर्क्षयुक्ते क्षणे
श्रीकृष्णभिधमम्बुजेक्षणमभूदाविः परं ब्रह्म तत्॥

इस सम्बन्धमें श्री सूरदासजीका पद निम्नलिखित है :

नन्दजू मेरे मन आनन्द भयो, मैं सुनि मथुरासे आयो।
लग्न सोधि ज्योतिषको गिनि करि, चाहत तुम्हहिं सुनायो॥
संवत्सर 'ईश्वर' को भादो नामजु कृपा धर्‌यो है।
रोहिणी बुध आठै अँधियारी हर्षण योग पर्‌यो है॥

वृष है लग्न उच्चके उडुपति तनको अतिसुखकारी।
दल चतुरंग चलै सँग इनके ह्वैहैं रसिक-विहारी॥
चौथी रास सिंहके दिनमणि, महिमण्डलको जीतै।
करिहैं नास कंस मातुलको, निहचैं कछु दिन बीते॥
पंचम बुध कन्याको शोभित पुत्र बढ़ैंगे सोई।
छठहैं शुक्र तुलाके शनि कुज शत्रु बन्हैं नहि कोई॥
नीच ऊँच जुवति बहुती भोगैं सप्तम राहु पऱ्यो हैं।
केतु मुरतिमाँ स्याम-बरण चोरीमें चित धाऱ्यो हैं॥
भाग्य भवन में मकर महीसुत अति ऐश्वर्य बढ़ेगो।
द्विज गुरुजनको भक्त होईके कामिल हटैगो॥
नवनिधि जाके नाभि बसत हैं, मीन बृहस्पति केरी।
तबहि नन्द - महल आनन्दें ग्रहपति पऱ्यो है॥
असन बसन गजपति धेनु धन भूरि भँडार लुटायो।
वंदीजन द्वारे जस गावैं, जो जाच्यो सो पायो।
व्रज में कृष्णजन्म को उत्सव 'सूर' विमल जस गायो॥

खमाणिक्य ज्योतिषी तथा संत सूरदास के उपर्युक्त पदोंके अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रकी जन्मकुण्डली इस प्रकार बनेगी :



अब हम महाभारतकी घटनाओं तथा पुराणोंके कुछ वचनोंके आधारपर भी ज्योतिषके माध्यमसे कृष्णका जन्माब्द निकालनेका यत्न करें। महाभारतके आदिपर्व (अध्याय २ श्लोक १३) में लिखा है :

अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
स्यमन्तपञ्चके युद्धं कुरु-पाण्डवसेनयोः॥

वनपर्वके १४९ अध्यायके ३८वें श्लोकमें मारुतिने भीमसे कहा है :

एतत्कलियुगं नाम अचिराद्यत् प्रवर्तते।

गदापर्वमें (अ० ३१, श्लोक १३) में दुर्योधन-वधके बाद श्रीकृष्ण बलरामसे कहते हैं :

प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञां पाण्डवस्य च।
आनृण्यं यातु वैरस्य प्रतिज्ञायाश्च पाण्डवः॥

वायुपुराणका वचन है :

अष्टाविंशतिमे तद्वद् द्वापरसंध्यांशसंश्रये।
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः॥

उपर्युक्त वचनोंसे सिद्ध है कि पाण्डव तथा श्रीकृष्णका समय द्वापर तथा कलिकी संधि है। श्रीमद्भागवतके (१२.२.९) के अनुसार श्रीकृष्ण भगवान्‌का जब निर्वाण हुआ, उसी समय कलिका आरम्भ हुआ। निर्वाणके समय श्रीकृष्णकी आयु १२५ वर्षकी थी।

प्राचीन भारतीय-ज्योतिष-सिद्धान्तानुसार कलियुगका प्रमाण ४३२००० वर्ष होता है। द्वापर-कलिकी संधि १०० वर्षकी होती है। हमारे सभी सिद्धान्तकार एकमत हैं कि कलियुग का आरम्भ शकारम्भसे ३१७९ सौर वर्षपूर्व था। श्रीमद्भागवतके अनुसार इसी समय भगवान्‌का निर्वाण १२५ वर्षकी आयुमें हुआ। आज सन् १९७१ ई० को शकाब्द १८९३ है : अतः आजसे कलिको आरम्भ हुए १८९३+३१७९=५०७२ सौर-वर्ष हो गये। इससे पूर्व १०० वर्ष द्वापर-कलिके संधिके, तत्पूर्व २५ वर्ष भगवान्‌के जन्मके मिलानेसे उपर्युक्त मानसे आज सन् १९७१ ई० से ५१९७ वर्ष पूर्व भगवान् श्रीकृष्णका जन्म प्राप्त होता है।

कलिके आरम्भसे ३०४४ वर्षतक युधिष्ठिरके संवत्का प्रचलन रहा तथा उसके उपरान्त १३५ वर्ष उज्जैनके शकका, तदनन्तर आज १८९३ शकाब्द हुआ, तो इनका योग ३०४४+१३५+शकाब्द १८९३=५०७२ वर्ष यानी आजसे कलियुगको आरम्भ हुए ५०७२ वर्ष हुए। यह अंक उपर्युक्त गणनाके तुल्य है। भगवान् श्रीकृष्णका जन्म यदि कलिसे पूर्व १२५ वर्ष माना जाय, तो सूर्य-सिद्धान्तके गणनानुसार उस समय ग्रहोंका मध्यम स्पष्ट यह आता है : मंगल राश्यादि ६।१४।४०, बृहस्पति ५।१६।०८, शनि ९।०३।०७। इनमें से कोई भी ग्रह उच्चके नहीं हैं तथा इनकी खमाणिक्य तथा सूरदासके पदोंके ग्रहोंसे कोई संगति नहीं बैठती। सूरदाससम्मत भगवान्‌की कुण्डलीमें चं. मं. बु. श. उच्चके तथा सू. बृ. शु. स्वगृही हैं। भगवान्‌के वैभवकी दृष्टिसे यह कुण्डली ज्योतिषिक उत्कर्ष-कल्पनाके अनुकूल है। इस कुण्डलीकी ज्योतिषिक समीक्षा की जाती है। भगवान्‌का जन्म भाद्र कृष्ण ८ बुधवार रोहिणी नक्षत्रमें हुआ, यह सर्वमान्य है।

पंचांगोंमें कलिका आरम्भ भाद्रपद कृष्ण १३ रविवार आश्लेषा नक्षत्रमें हुआ मानते हैं। पर कुछ विद्वान् मध्यममानसे इसे फाल्गुन कृष्ण ३० के अन्तमें गुरुवारकी मध्यरात्रिको मानते हैं। जो हो, यह प्रसिद्ध उक्ति है कि युगादिमें सभी ग्रह एक जगह रेवत्यन्तमें हो जाते है और उनका स्पष्ट शून्य हो जाता है। इसे नवग्रही या सप्तग्रही कहा जा सकता है। युगका अर्थ ही है ग्रहोंका मेल। कुछ वर्ष पूर्व अष्टग्रहीका योग हुआ था, पर वहां ग्रहोंकी युति केवल २ ग्रहोंकी थी। बाकी ग्रह एक राशिमें थे। पर युगारंभमें सभी ग्रह अश्विनीमें प्रवेश करते हैं। श्री भास्कराचार्यने अपने 'सिद्धान्त-शिरोमणि'में कल्पारम्भके ग्रह स्पष्ट किये हैं जो इस प्रकार है: मंगल १२।२९।३।५० बुध, ११।२७।२४।२९, वृहस्पति ११।२९।२७।३६, शुक्र ११।२८।४२।१४, शनि ११।२८।४५।३४। इसके अनुसार ये सभी ग्रह रेवत्यन्तमें हो जाते हैं। कुछ ही कलाओंका अन्तर रह जाता है।

आर्ष ज्योतिष-सिद्धान्तके अनुसार कलि-आरम्भके सभी ग्रहोंका स्पष्ट शून्य लेकर सूर्य-सिद्धान्तानुसार भगवान्की उपर्युक्त कुण्डलीकी गणना की जाती है। बीज-संशोधित सूर्यसिद्धान्तानुसार ग्रहोंके भगण इस प्रकार हैं: एक महायुगके वर्ष ४३२०००० में सूर्यका भगण वही ४३२००००, चन्द्रका ५७७५३३३६, बुधका १७९३७०४४, वृहस्पतिका ३६४२१२, शुक्रका ७०२२३६४, मंगलका २२९६८३२, शनिका १४६५८०। इनमें से तीन ग्रहों मंगल, वृहस्पति तथा शनिकी गणना की जाती है। बाकी ग्रह तो भाद्रपद कृष्ण ८ को वैसे ही रहते हैं, जैसे कुण्डलीमें हैं। उपर्युक्त गणनाके अनुसार शनिकी सौर-वार्षिक गति ०।१२।१२।५४ उपलब्ध होती है, मंगलकी ६।११।२४।०९ और वृहस्पतिकी ।००।२१।३।

इस तरह कलिके आरम्भको ग्रहोंका शून्य स्पष्ट लेकर उससे पीछे १३२ वर्ष पीछे इन तीन ग्रहोंकी यह मध्यम-स्थिति है। वृहस्पति राश्यादि १०।१४, शनि ६।०७२९, मंगल ९।२४।५०। स्पष्टस्थितिमें सम्भव है, वृहस्पति मीनमें हो जाय। इस तरह वृहस्पति मीनमें, शनि तुलामें तथा मंगल मकरमें कलिसे पूर्व १३२ वर्ष में हो जाते हैं जो हमारी गणनाके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णका जन्माब्द है अर्थात् आजसे ५२०४ वर्ष पूर्व पड़ता है। ●

भगवत्सम्बन्ध ही सत्सम्बन्ध

भगवत्सम्बन्ध ही सत्सम्बन्ध है। यह सिद्धान्त है कि भगवान्से सम्बन्ध स्थापित कर प्राणी उन्हींका जन्म-जन्मके लिए हो जाता है। किसी भी स्थितिमें भगवान्से सम्बन्ध नहीं छूट सकता, यह सनातन सत्य है। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि जगत्से स्थापित सम्बन्ध टूट जाता है। एक क्षणमात्रमें ही सम्बन्धियोंमें विरोध उठ खड़ा होता है और मनमें बड़े-बड़े विकार अपना काम आरम्भ कर देते हैं। भगवान्से ही किसी-न-किसी रूपमें सम्बन्ध जोड़ना चाहिए, जगत्के प्रत्येक दृश्यमें भगवान्का दर्शन करना ही भगवत्साक्षात्कार है। ●

पुष्टिमार्गकी आधार-शिला

अष्टाक्षर महामन्त्र

श्री अनवर आगेवान



तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥

'श्रीकृष्णः शरणं मम'का इस महामंत्रके जपका वैष्णवोंमें विशिष्ट स्थान है। श्री वल्लभाचार्यके आदेशानुसार इस मंत्रका जप कलियुगकी समस्त आत्मिक कलुषताओंके विनाशकी महौषधि है। अतः मनुष्यको श्रद्धासे युक्त होकर संपूर्ण मनसे इसका अनवरत उच्चारण करना चाहिए।

मंत्र एवं जपके गोपनीय महत्त्वका समस्त धर्माचार्यों एवं धर्मग्रन्थोंने समर्थन किया है। मंत्र-जपसे मनुष्यको आत्मिक शुद्धता प्राप्त होती और उसकी अन्तिम मुक्ति सुनिश्चित हो जाती है। गीतामें कहा है: यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि। जप ही समस्त यज्ञोंमें उत्तम यज्ञ है। निरन्तर जपसे ईश्वरका साक्षात्कार होता है। इसोलिए भगवान्ने इसे अपना स्वरूप बतलाया है।

यदि जप इतना महत्त्वपूर्ण है, तो यह प्रश्न उठता है कि कौन-सा मंत्र हमें जपना चाहिए? श्रीवल्लभाचार्यके मतानुसार भगवत्परायण व्यक्तियोंको श्रीकृष्णमें ही अपनी निष्ठा स्थापित करनी चाहिए; क्योंकि वे ही परब्रह्म हैं: परं ब्रह्म तु कृष्णो हि। 'अन्तःकरण-प्रबोध' में उनका कथन है:

कृष्णात् परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम्।

श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई भी देवता दोषोंसे रहित अर्थात् पूर्णानन्दस्वरूप नहीं है। 'कृष्णाश्रय' में वे बार-बार यह कहते हैं कि श्रीकृष्ण ही समस्त जीवोंके संरक्षक हैं। इस कथनकी पुष्टि करती हुई ऋग्वेदकी निम्नलिखित पंक्ति महत्त्वपूर्ण है:

कृष्णं त एम रुशतः पुरोभाश्चरिष्णवर्चिर्वपुषामिदेकम्। (४. ७. ९.)

—हम अपनेको कृष्णरूप तुम्हारी शरणमें समर्पित करते हैं। रुद्रके रूपमें तुम त्रिलोक-संहारक हो एवं ज्ञानियोंके मुख्य स्रोत हो।

गीतामें भगवान्‌को परब्रह्म रूपमें स्वीकार करते हुए अर्जुनने कहा है :

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥ (गीता १०. १२)

—तुम ही परब्रह्म हो, परम धाम हो, परम पवित्र हो, दिव्य-शाश्वत पुरुष हो, देवताओंमें प्रथम हो, अजन्मा और सर्वव्यापी हो।

भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने सम्बन्धमें कहा है :

पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय॥ (गीता ७. ७)

—मैं इस जगत्‌का पिता हूँ, धारक एवं पितामह हूँ। मेरे अतिरिक्त और मुझसे परे कोई भी वस्तु नहीं।

भगवान् अन्यत्र भी इसी कथनको दोहराते हुए कहते हैं :

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याऽव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥ (गीता १४. २७)

—मैं ही अमृत एवं अविनाशी ब्रह्मका, शाश्वत धर्मका एवं ऐकान्तिक सुखका आश्रय हूँ।
कृष्ण शब्दकी व्युत्पत्ति पद्मपुराणमें इस प्रकार दी है :

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥

'कृष्' अथवा 'भू' धातु वस्तुतः एक ही है, जिनका अभिप्राय अस्तित्वसे है। 'ण' का अर्थ है निर्वृति अर्थात् जटिलतासे रहित आनन्द। अविनाशी एवं पूर्णानन्दरस परम ब्रह्म ही श्रीकृष्णका वाच्यार्थ है। जहाँ सत् एवं आनन्द है, वहीं चेतना है।

इस प्रकार अन्य धर्मग्रन्थों, धर्माचार्यों एवं ऋषि-मुनियोंमें श्रीकृष्णको परब्रह्म माना है। उसीको शाश्वत पुरुष, देवोंका देव, अव्यक्त, अक्षय एवं शाश्वत तेज कहकर उनकी उपासनाका समर्थन करते हैं।

अतः वेद, श्रीमद्भागवत गीता, ब्रह्मसूत्र, पुराणादिका गहन अध्ययन करनेके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यने श्रीकृष्णकी उपासना एवं पूर्ण आत्मसमर्पणको सर्वोपरि मानकर अपने ग्रंथोंमें 'श्रीकृष्णः शरणं मम'के महामंत्रका चयन करके उसकी पृथक् प्रतिष्ठा की।

यह मन्त्र पुष्टिमार्गकी आधार-शिला है। इस मन्त्रके प्रत्येक अक्षरका महत्त्व है, जो इस प्रकार है :

श्री : सम्पत्ति एवं समृद्धि प्रदान करता है।
कृ : पापोंको भस्म करता है।
ष्ण : ऐहिक एवं पारलौकिक तापोंको विनष्ट करता है।
श : आवागमनके चक्रसे मुक्त करता है
र : भगवत्–ज्ञान कराता है।
ण : भगवद्-भक्ति दृढ करता है।
म : गुरु-सेवा और प्रेम प्रगाढ करता है।
म : सन्त-समागम एवं भगवत्-सान्निद्धय कराता है।

इस मन्त्रके तीन रूप माने गये हैं : आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक। मन्त्रके अक्षर आधिभौतिक रूप है, श्रीकृष्णलीलावर्णित श्रीमद्भागवत कृष्णरूप है और 'सुबोधिनी' (भाष्यग्रन्थ) राधारूप है। अतः यह आध्यात्मिक रूप है। और राधा-कृष्णका रसात्मक स्वरूप आधिदैविक रूप है।

इस महामन्त्रका जप विशेष रूपसे होना चाहिए। जप करते समय हमें अपनी दुर्बलताओंका सतत ध्यान रहे, आत्म-निरीक्षणके अभ्याससे क्षुद्र पाप एवं कलुषभाव प्रत्यक्ष हो जाते हैं और उनके निवारणकी इस साधनासे हमारे मनकी शुद्धि होती है। फिर इस अभ्याससे हमारी आत्मा पवित्र, बलवती एवं लगनमयी हो जाती है। श्री विठ्ठलेश प्रभुके शब्दोंमें कहें तो :

आनन्दं परमानन्दं सायुज्यं हरिवल्लभम्।
यः पठेच्छ्रीकृष्णमात्रं सर्वज्वरविनाशनम्॥
तं हि दृष्ट्वा त्रयो लोकाः पूताः स्युः किमु मानवाः।
मध्ये च सर्वमन्त्राणां मन्त्रराजोत्तमोत्तमः॥

यह मन्त्र सब प्रकारके तापोंका नाश करता है और जो भी व्यक्ति इस मन्त्रका जप करता है, उसे आनन्द, परमानन्द, भगवत्-सान्निद्धय और हरिप्रेम उपलब्ध होता है। इस मन्त्रका जप करनेवाले मनुष्योंके दर्शनसे तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं। समस्त मन्त्रोंमें यह उत्तम है, सर्वश्रेष्ठ है।

इस प्रकार अष्टाक्षर महामन्त्र समस्त धर्मग्रन्थोंका साररूप मन्त्र है। अन्ततोगत्वा इसका महत्त्व अन्य मंत्रोंसे कहीं अधिक हैं, क्योंकि परम ब्रह्मकी उपासना चरम फलदायिनी होती है। इसीलिए तो श्रीकृष्णने स्वयं अपने श्रीमुखसे कहा है कि 'मुझे पूजनेवाले मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं।'



ज्योतिका पर्व दीपावली

श्री रमाशंकर शास्त्री 'विमल', अनुसन्धाता



समस्त भारतको राष्ट्रिय एकताके सूत्रमें आवेष्टित करनेवाले त्यौहारोंमें दीवाली प्रमुखतम है। इसमें उत्तरसे दक्षिणतक प्रत्येक भारतीय अमाकी अँधियारी रातमें अपने-अपने घरोंको दीपोंकी पंक्तियोंसे आलोकित कर अन्तर्बाह्य प्रकाशका साम्राज्य छा देता है। दीपावली कार्तिक अमावस्याको सोत्साह मनायी जाती है। किन्तु इस पूरे उत्सवका प्रारम्भ कार्तिक कृष्ण द्वादशीसे ही हो जाता है, जिसे 'गोवत्सद्वादशी' कहते हैं। इस दिन स्त्रियाँ व्रतस्थ रहकर शामको गाय-बछड़ोंकी पूजा करती हैं। इसके दूसरे दिन अर्थात् यमद्वादशी या 'धनतेरस' भी कहते हैं। इस दिन आयुर्वेदके परमाचार्य, भगवान्के अन्यतम अवतार पीयूषपाणि धन्वन्तरिजीकी जयन्ती होती है और लोग नये-नये बर्तनोंको भी खरीदते और धनपूजन करते हैं। तीसरे दिन नरक-चतुर्दशी पड़ती है। कहा जाता है, इसी दिन भगवान् श्रीकृष्णने नरकासुरका वधकर उसकी कारामें बद्ध सहस्रों ललनाओंको मुक्ति दी। इस दिन प्रातः सूर्योदयके पूर्व अभ्यङ्गस्नान विहित है। इसी दिन हनुमज्जयन्ती भी मनायी जाती है। शामको लोग अपने-अपने घरोंको कलात्मक ढङ्गसे सजाते हैं और असंख्यासंख्य दीपोंसे जगमगा देते हैं। इसी भव्य वातावरणमें महालक्ष्मी, धनद कुबेर आदिका पूजन करते हैं। उसी समयसे ३ दिनोंका 'बलिका राज्य' प्रारंभ होता है जिसका वरदान भगवान्ने महाराज बालिको दिया। दूसरे दिन अन्नकूट और गोवर्धन-पूजा होती है और तीसरे दिन यमद्वितीयाको भाई-बहनोंका भावभरा 'भैयादूज'का त्यौहार होता है। इस दिन यमराज अपनी बहनके घर गये थे और यमीने उन्हें टीका किया था। दीपावली उत्सवकी इतनी व्यापक व्याप्ति है।

आखिर इस उत्सवका श्रीगणेश कब हुआ, यह विचारणीय है। भारतीय इतिहासके अनुसार आदियुगमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंकी स्थापना हुई थी। उनके सतत स्मरण, मनन और चिन्तनसे सहजन्मार्जित पाप-समूहोंका नाश हो जाता है, ऐसी मान्यता है। ये ज्योतिर्लिङ्ग ब्रह्मके ही स्वरूप हैं, अतः ये अमर माने जाते हैं। आदिमें इन ज्योतिर्लिङ्गोंकी पूजा दीप जलाकर की गयी और इसीके स्मारक रूपमें दीपमालिका-उत्सव चल पड़ा, ऐसा कुछ लोगोंका मत है।

कुछ लोगोंका विचार है कि यह दीवाली अहंकारपर विनयकी, अधर्मपर धर्मकी और रावणपर रामकी विजय सूचित करती है। जब भगवान् राम सम्पूर्ण जनोंको कष्टदायी रावण-

का बधकर चौदह वर्ष वाद अयोध्या लौटे, तो अयोध्यावासियोंने उनके स्वागतमें दीपावलीका यह पवित्रतम उत्सव मनाया।

समुद्रमन्थनसे लक्ष्मीका प्रादुर्भाव भी इसी दिन हुआ था। इसलिए लक्ष्मीके लाड़ले व्यापारी इस दिन धूमधामसे रात्रिमें माताकी भावभरी पूजा करते हैं। रात्रिमें पूजा करनेका एक कारण यह धारणा बतायी जाती है कि उस दिन लक्ष्मीजी अपने वाहन उल्लूपर सवार होकर भ्रमण करती हैं। एतदर्थ व्यापारीवर्ग उसी समय आपकी अगवानी करता है।

भारतके प्रायः सभी प्रदेशोंमें दीपावलीका यह उत्सव उल्लासमय वातावरणमें मनाया जाता है। अधिकांश प्रदेशोंमें इस दिन लक्ष्मीपूजाका ही विधान है। लोगोंका विश्वास है कि भगवती लक्ष्मी अन्धकारपूर्ण घरमें प्रवेश नहीं करतीं, एतदर्थ प्रत्येक भारतीय इस दिन अपने-अपने घरोंको दीपोंसे आलोकित कर उनका आवाहन करता है।

इस पुनीत उत्सवपर जहाँ बहुतसे लोग लक्ष्मीकी पूजा करते हैं, वहीं बंगालमें बंगबन्धु देवी कालीका पूजन और आवाहन करते हैं। वहाँ देवी लक्ष्मीका पूजन दो सप्ताह पूर्व ही सम्पन्न हो जाता है। बंगबन्धुओंका विश्वास है कि देवी काली रोगोंका विनाश करनेवाली तथा सुख देनेवाली हैं। पूजा और बलिसे इनको संतुष्ट कर मानव समस्त मनोभिलषित वस्तुओंको प्राप्त कर सकता है। इसलिए लोग दीपोंकी जगमगाहटमें देवी कालीकी पूजा धूमधामसे करते हैं।

उत्तर भारतमें एक ओर दीपावलीका सम्बन्ध जहाँ मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामसे माना जाता है, वहीं दूसरी ओर भगवान् श्रीकृष्णसे भी सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। आसाम प्रदेशमें किंवदन्ती प्रचलित है कि पूर्वकालमें वहाँका अधिपति नरकासुर नामका राक्षस था, जिसकी राजधानी प्राग्ज्यौतिषपुर (गौहाटी) थी। उससे देव और मानव सदैव त्रस्त रहते थे। उसने कई सहस्र युवतियाँ बन्दनी कर रखी थीं। राधिकारंजन भगवान् श्रीकृष्णने कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन उस दुष्ट नराधम नरकासुरका वधकर उन युवतियोंको मुक्त किया था। तदनन्तर अमावस्याके दिन आपके द्वारका पहुँचनेपर आपकी परम प्रेयसी सत्यभामाने आपको अभ्यङ्ग-स्नानादि कराया। फिर आरती उतारकर आपका स्वागत किया और नरकासुरपर विजयके उपलक्ष्यमें चारों ओर दीप जलाये।

मैसूरकी दीपावली अपने ढंगकी बेजोड़ होती है। आज पूरे मैसूर प्रदेशमें सत्यभामाकी तरह इसे मनाया जाता है। अमावास्याके दिन स्त्रियाँ अपने पुरुषों और बच्चोंको भद्रपीठ (पीढ़ा या पाटा) पर बैठाकर भगवान् श्रीकृष्णसम्बन्धी गीतोंका गान करती उनकी आरती उतारती हैं। तदनन्तर तैल मर्दनकर उन्हें अभ्यङ्गस्नान कराती हैं। पुरुषोंके स्नानके बाद स्त्रियाँ स्वयं स्नान करती हैं। इस दिन सभी लोग नये-नये वस्त्र धारण करते हैं। स्त्रियाँ इस पुनीत अवसरपर सौभाग्यसूचक सिन्दूर, नारियल, पान एवं फल-फूलका भी परस्पर आदान-प्रदान करती हैं। सान्ध्यवेलामें सारा मैसूर दीपों के चाकचिक्यसे चमचमा उठता है।

आन्ध्रप्रदेशमें स्त्रियाँ दीपावलीके शुभ अवसरपर दरवाजेपर बने सुसज्जित बाँसके मञ्चपर आसीन हो गायन-वादनके साथ देवी लक्ष्मीका स्वागत करती हैं। नगरमें आतिश-बाजीका आकर्षक कार्यक्रम रहता है। हैदराबादके समीपवर्ती स्थानोंमें भैंसोंकी लड़ाईका कार्य-क्रम भी दर्शनीय होता है।

राजस्थानमें भी दीपावलीका पर्व धूमधामसे मनाया जाता है। विजयादशमीसे ही यहाँकी युवतियाँ 'घुडल्या' निकालना प्रारम्भ कर देती हैं। एक जालीदार घड़ेपर दीपक रखकर उसे अपने सिरपर ले कुमारी, युवतियाँ भगवान् कृष्ण और रामसम्बन्धी गीत गाती घर-घर घूमती हैं। युवकवर्ग इस अवसरपर घर-घर घूमता हीड़के लिए तेल और मिठाई माँगता है। हीड़ मिट्टीका बना बड़ा-सा 'दीपक' है, जिसे रूई भरकर तेलसे पूरित कर दिया जाता है। फिर उसे गन्नेमें बाँधकर प्रज्वलित कर दिया जाता है, जो सदा जलता रहता है। दीपावलीके दूसरे दिन 'खेखरा'का उत्सव मनाया जाता है, जिसे लोग यहाँ अन्नकूट और गोवर्धन-पूजाके नामसे जानते हैं।

गुजरातमें दीपावलीके अवसरपर होनेवाला "गरबा" उत्सव लोकप्रसिद्ध है। इस उत्सवमें स्त्रियाँ नृत्यके साथ-साथ भावात्मक गीत गाती हैं। इस दिन गाय-बैलोंको नहला-धुलाकर पूजा भी की जाती है।

त्यौहार और उत्सव हमारे सांस्कृतिक चेतनाके प्रतीक हैं। इनमें से कुछ राष्ट्रिय होते हैं, तो कुछका सम्बन्ध धर्म-संस्कृतिसे होता है। दीपावलीका यह मनोरम पर्व धर्म और सम्प्रदाय की सीमासे परे है। इसे मुसलमानोंके साथ-साथ सिख, ईसाई और जैनधर्मावलम्बी भी बड़े आकर्षक ढङ्गसे मनाते हैं।

सिखोंके छठे गुरु जहाँगीरके जेलसे मुक्त होकर दीवालीके दिन ही अमृतसर पहुँचे थे, जिनके स्वागतमें दीपोंकी पंक्ति जगमगा उठी थी। तभीसे यह क्रम आज भी चालू है। स्वामी रामतीर्थ, आर्यसमाजके प्रवर्तक महर्षि दयानन्द और जैनियोंके तीर्थंकर भगवान् महावीरका इस पावन आलोक पर्वसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये लोग इसी पावन आलोक-वेलामें प्रकाश-पुञ्जमें विलीन हुए थे।

दीपावलीका यह ज्योतिपर्व भारतकी सीमाको अतिक्रमण कर अन्य देशोंमें अपना मधुरिम प्रकाश बिखेरता है। चीनमें इसे 'नईमदुआ' के नामसे जाना जाता है। जापानमें इसे 'तोरोनगाशी' कहते हैं। जापानियोंका विश्वास है कि इस दिन पूर्वज आशीर्वाद देनेके लिए आते हैं, एतदर्थ जापाननिवासी इस दिन दीपोंसे उनका पथ आलोकित करते हैं। ब्रह्मदेशमें भी यह त्यौहार उत्साहपूर्ण ढङ्गसे मनाया जाता है, जिसे वहाँके निवासी 'तँगीजू' कहते हैं। बर्मियोंका विश्वास है कि भगवान् बुद्ध ज्ञानप्रकाशसे युक्त होनेपर संसारको उस प्रकाशसे आलोकित करनेके लिए इसी दिन चल पड़े थे। नेपालमें भी यह त्यौहार भारतीय लोगोंकी भाँति मनाया जाता है। इस पावन पर्वको यहाँ लोग 'तिहार' के नामसे जानते हैं।

जगमग जगमग दीपावलियाँ !

स्वर्गीय श्री 'रुद्र' काशिकेय

सोने की कलियाँ बन निकलीं, जगमें जग जग दीपावलियाँ !
तमसाकार निराशामय मानसमें आशा-दीप प्रवाहित
शतशः ? हाँ सहस्रशः ? हाँ हाँ लाखो ? इससे भी अतिवाहित
आग भभूका रूप, भूपसे भाल डिठौना देकर काला
अमरवधूको वरने निकले प्राण-कुमार अभी अविवाहित
आलोकभरी बन रहीं अतः मग-मग पग-पग दीपावलियाँ !
नींद निशाके तम-अम्बरमें जाग गये सपनोंके तारे
एक वास्तविक रविकी फिर भी समता कर पाते न बिचारे
आज रात बस कह देता है आकुल आतुर हो अँधियारा
क्षुद्र प्रकाश-पुतलियोंसे इस 'तुम जीतीं लो ! हम ही हारे
हँसती आज गले हैं तमके लग-लग ठग-ठग दीपावलियाँ !
अपनेपनके सूनेपनमें जनजीवन न कहीं खो जाये
खग-टोलीसे एक विहग भी, भूले भी न विलग हो जाये
अपना अल्पायास विपुल कह दुनिया दुन्दुभि पीट रही है
शशि कम्भित किरणोंसे छू दे कृत्रिम कोलाहल सो जाये
स्नेह घटा अब आह ! हुई हैं डगमग डगमग दीपावलियाँ !

इस प्रकार हम देखते हैं कि दीपावलीका पावन पर्व समस्त भारतको एकताके सूत्रमें आबद्ध करनेवाला है। इस दिन सद्भाव, श्रद्धा और प्रेमके कारण मानव दीपोंकी आलोक-वेलामें जाति-पाँति और धर्म आदि-जनित भेदभाव भूल जाता है, जो इस महोत्सवकी चरम उपलब्धि है।

दीपावलीकी हर्षमय आलोक-वेलामें 'द्यूत-दुर्व्यसन' का जो चलन चल पड़ा, वह कमसे कम आज तो अत्यन्त बेतुका-सा लगता है। दीपावलीके दिन द्यूतक्रीड़ाके लिए कुछ लोग शास्त्रीय प्रमाण देते हैं; फिर भी वह कनक-विषके समान हैं। जैसे कनक (सोने) के पात्रमें स्थापित विष भी मृत्युका ही कारण होता है, उसी तरह व्यसन चाहे कोई भी हो और किसी भी शुभ समयमें किया जाता हो, वह मानवको पतनके गर्तमें ही गिराता है। इसके प्रमाण-भूत धर्मराज युधिष्ठिर और राजा नल आदि महीपति हैं। एतदर्थ हम दीपावलीकी पावन आलोकमय वेलामें अपने विवेकको जाग्रत् रखकर 'द्यूत'से बचते हुए इस उल्लासमय वातावरणमें अपनेको विलीन कर दें तो हमारे लिए यह पर्व अधिक कल्याणप्रद होगा। श्रुति भी यही कहती है: **तमसो मा ज्योतिर्गमय** अर्थात् अन्धकारसे मुझे प्रकाश तक पहुँचाओ। ●

भरत सरिस को राम-सनेही ?

श्री राधाकान्त ओझा



प्रस्तुत पद्यांश गोस्वामी श्री तुलसीदासजीके रामचरित-मानसका है, जो भगवद्भक्त भरतलालके जीवनचरितसे सम्बद्ध है। गोस्वामीजीने इस अर्धालीसे मानो राम-सनेहियोंकी परीक्षा ही ली है, जिसमें ऐतिहासिक सफलताका सेहरा मात्र श्री भरतलालके ही सिर बँध पाया है। वैसे मानसमें राम-सनेही दो-तीन पात्रोंका उल्लेख पाया जाता है और उनकी भी परीक्षा हुई हैं। महाराज दशरथका रामचन्द्रजीके प्रति अगाध स्नेह था। उन्होंने राजा मनुके रूपमें यह वरदान ही माँगा था :

सुत विषयक तव पद रति होऊँ। मोहि बड़ मूढ कहै जनि कोउ ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम ही अधीना ॥

इस मणि-फणि और जल-मीनके प्रेमको राजा दशरथने निभाया भी। जब विश्वामित्र श्रीरामजीको माँगने आये तो राजा दशरथ राम-लक्ष्मणको देना नहीं चाहते थे। उनका हृदय काँप उठा और मुख मलीन हो गया। प्रेमकी अनावरतासे ही उन्होंने यहाँ भी कह दिया :

चौथेपन पायउँ सुत चारी। विप्र बचन नहीं करेहुँ बिचारी ॥
माँगहुँ भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देऊँ आज सहरोसा ॥
देह प्राण ते प्रिय कछु नाहि। सोउ मुनि देउ निमिष एक माहीं ॥

किन्तु रामको देना नहीं चाहा। रामको देना क्या था ? अन्धा बनना था। सर्पसे मणि छिन जानेपर उसका अन्धा होना लोक-विदित ही है।

यहाँ गोस्वामी तुलसीदासजीका शब्द-चयन सचमुच दर्शनीय है। विश्वामित्रजीने रामको माँगा तो 'राम'नाममें दो अक्षर होनेसे दशरथने भी दो अक्षरोंवाली वस्तुएँ ही उसके विकल्पमें दिखलायीं—भूमि, धेनु, धन, कोसा, देह और प्राण। मानसका यह शाब्दिक चमत्कार है। विश्वामित्रके साथ रामजीके चले जानेपर दशरथ अन्धे सर्पके सदृश कुछ क्षण जीवित रहे, किन्तु जब रामका चौदह वर्षके लिए वनगमन हुआ तो सचमुच उन्होंने प्राण भी त्याग दिये :

वन्दऊँ अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहिं रामपद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृण इव परिहरेऊ॥

रामके चरणोंमें इतना अगाध प्रेम कि रामके न रहनेपर शरीर भी त्याग दिया !

मीन भी जलसे बिछुड़ते ही मर जाती है। वैसे मेंढक, कछुआ, सर्प, मकर आदि अनेक जलचर जीवोंके लिए जल ही आधार है, किन्तु जलसे वियुक्त होनेपर मीनको छोड़ अन्य कोई जीव मरते नहीं। मरते भी हैं तो देरसे, पर मछलियाँ तो तुरन्त प्राण छोड़ देती हैं। गोस्वामीजी 'दोहावली'में कहते हैं :

उरग, मकर, दादुर, कमल, जल जीवन-जल-गेह।
तुलसी एक ही मीनको, है साँचिलो सनेह॥

मीनकी दशावत् दशरथकी दशाका चित्रण गोस्वामीजीने किया है। राम-वनवासके लिए जब कैकेयीने वरदान माँगा, तो दशरथकी दशा कैसी होती है, देखिये :

ब्याकुल राऊ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कंठ सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीन दीन बिनु पानी।

राजा दशरथने तो इतनातक कहा कि कदाचित् मछली जलके बिना जी जाय और मणिके बिना सर्प भी दीन-दुखी बनकर प्राण धारण किये रहे। किन्तु हे प्रिया ! मेरा जीवन तो रामके ही अधीन है :

जिये मनी बरू बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिए दुख दीना॥
कहऊँ सुभाउ न कछु मनमाहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं॥

प्रियतमके वियोगमें मर जाना ही लोकमें उत्कृष्ट प्रेमका परिचायक है, ऐसा कुछ विद्वानोंका मत है। किन्तु रहिमनने तो मीनका प्रेम लोकोत्तर सिद्ध किया है। उन्होंने कहा है कि जलसे वियुक्त मीनका मर जाना ही उत्कृष्ट प्रेम नहीं, किन्तु मरनेके बाद भी प्रियतम जलसे मिलनेकी बार-बार इच्छा होना ही सच्चा प्रेम है। कारण मीनके मरनेपर उसके बासको दूर करनेके लिए पुनः जलमें धोया जाता है। फिर जब लोग उसे खाते हैं तो अधिक प्यास लगती है, अतः पुनः बार-बार जल पीनेकी आकांक्षा होती है। इसलिए मीनको मरनेके बाद भी जलसे मिलनेकी और भी अधिक आशा बनी रहती है :

मीन मारि जल धोइए। खायहूँ अधिक पियास॥
रहिमन मीनको मरत हूँ। अधिक मिलनकी आस॥

ठीक ऐसी ही स्थिति महाराज दशरथकी है। रामराज्याभिषेकके समय पुनः वे देवलोकसे रामको देखने आते हैं।

दशरथका रामके प्रति इतना उत्कृष्ट प्रेम होते हुए भी गोस्वामीजीने राम-सनेहियोंमें भरतका स्थान सबसे ऊँचा बतलाया, इसका मुख्य कारण एक ही है जिसे कुलगुरु वशिष्ठजीने भरतसे कहा है।

रायँ राजपदु तुम कहुँ दीन्हा। पिता वचन फुर चाहिए कीन्हा ॥
तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम-बिरहागी ॥
नृपहि बचन प्रिय नहीं प्रिय प्राना। करहुँ तात पितु-बचन प्रवाना ॥

यहाँ दशरथको ब्रह्माण्डनायक, जगन्नियन्ता सर्वतन्त्रस्वतन्त्र प्रभु श्रीरामसे बढ़कर कैकयीको दिये गये वरदानरूप दो वचन ही प्रिय हैं, ऐसा उक्त चौपाईसे ध्वनित होता है। वास्तवमें भक्तों तथा राम-सनेहियोंके लिए तो प्रियतम राम ही सब कुछ है। सांसारिक वस्तुएँ तो नाशवान् होती हैं। उनके लिए प्राण त्यागना उत्कृष्ट प्रेमका द्योतक नहीं। उक्त प्रसंगमें दशरथका वचन भी लौकिक ही है, जिसके लिए प्राणका त्यागना राम-सनेहियोंकी परीक्षामें प्रथम श्रेणीसे वंचित कर देता है।

अब आप भरतलालके प्रेमको देखें ! श्री भरतलालने अखिल विश्व-प्रतिपालक विश्व-मनभावन भगवान् रामके लिए पिता और माता द्वारा प्रदत्त; गुरु, मन्त्री तथा प्रजाओंसे सुसम्मत राज्यको तुच्छ समझा और गुरु वशिष्ठजीके समझानेपर भी यह कहते तनिक भी संकोच नहीं लाया :

मोहि राज हठि देइहहू जबहीं। रसा रसातल जाइहिं तबहीं ॥
मोहि समान को पापनिवासू। जेहिं लगि सीय राम बनवासू ॥
मैं सठु सब अनरथकर हेतु। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू ॥
बिनु रघुवीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासु।

शास्त्रोंमें माता-पिताकी सेवा अथवा उनकी आज्ञाओंका पालन परम कर्तव्य माना गया है, जिसके लिए महर्षि वशिष्टजीने कहते हैं :

अनुचित उचित विचार तजि, जो पालहिं पितु-बैन।
ते भाजन सुख सुजसके, बसहिं अमरपति ऐन ॥

अन्यत्र भी कहा गया है।

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्।
गुरुसुश्रूषया त्वेवं ब्राह्मलोकं समश्नुते ॥

अर्थात् मानव मातृभक्तिसे इस लोकको और पितृभक्तिसे मध्यम लोकको तथा गुरुकी सेवासे ब्रह्मलोकको भोगता है। किन्तु भगवान् रामके प्रेममें श्रीभरतजीने अपने माता-पिता, बन्धु, सखा आदि लौकिक सम्बन्धोंको छोड़ तथा प्रभुके चरणोंमें ही अपना सम्बन्ध जोड़कर उत्कृष्ट प्रेमकी स्थापना की। भगवान् रामने विभीषणसे कहते हैं :

जननी जनक बन्धु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा ॥
सबके ममता ताग बटोरी। सम पद मनहिं बाँध बरि डोरी ॥

समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मनमाहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी-हृदयँ बसइ धनु जैसे॥

भरतका त्याग भी असीम बन चुका था। जिसका चित्रण गोस्वामी तुलसीदासजीने एक ही चौपाईमें कर दिया है :

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चम्पक-बागा॥

भरत-चंचरीक श्रीरामके चरण-कमल छोड़कर अन्यत्र क्यों जाय, क्योंकि कमल और भ्रमरका सहज सम्बन्ध है। वन्दनाके प्रकरणमें गोस्वामी तुलसीदासजीने राम, लक्ष्मण और शत्रुहनके विषयमें कमलकी चर्चा की है, किन्तु भरतकी वन्दनामें उन्होंने भरतको भ्रमर ही बताया और श्रीरामके पद-कमलोंमें उसका सहज अनुराग दिखलाया है :

प्रनवउँ प्रथम भरतके चरना। जासु नेम ब्रत जाई न बरना॥
रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

यह है भरतका उत्कृष्ट प्रेम, जिसके कुछ सन्दर्भोंका दिग्दर्शन कराया गया!

अब भगवान् रामके वन जाते समय वनके समीपवर्ती ग्रामोंकी ग्रामवधुओंके स्नेहपर दृष्टिपात करें। ग्रामवधुओंका प्रेम थोड़ी देरके लिए तो बहुत ही ऊँचा है। भगवान् रामकी सुन्दरता देखकर गाँवकी स्त्रियोंके मनमें एक छोटी-सी कल्पना होती है, जो प्रेम और त्यागकी प्रतिमूर्ति है। वे सब धीरज धारणकर परस्पर कहती हैं :

धरि धीर कहैं, चलु देखिअ जाइ, जहाँ सजनी! रजनी रहिहैं॥
कहिहैं जगु पोच, न सोचु कछू, फलु लोचन आपन तौ लहिहैं॥
सुखु पाइहैं कान सुने बतियाँ कल, आपुसमैं कछु पै कहिहैं॥
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखि रामु हिये महिहैं॥

रामकी अनोखी सुन्दरता उन ग्रामवधुओंके चित्तको थोड़ी देरके लिए भले ही अपने अधीन कर ले, किन्तु उनका वह प्रेमातिरेक शाश्वत न होकर क्षणिक है; क्योंकि हृदयमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके साथ चलनेकी कल्पना तो होती है, परन्तु सम्बन्धियोंका भय और लज्जा-संकोच भी है। इसलिए उनका अतिउज्ज्वल प्रेम भरतकी कोटिमें नहीं गिना जा सकता।

इसी तरह भगवान् रामके प्रति श्री हनुमान्‌जीका स्नेह भी अगाध है। जिसकी गहरायी कल्पनातीत है। श्री हनुमान्‌जीके प्रेम-सागरमें अवगाहन करनेपर भगवान् श्रीरामको भी अपना स्वत्व भूल जाना पड़ा :

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। करि बिचार देखौं मन माहीं॥
प्रति-उपकार करौं का तोरा। सन्मुख न होई सकत मन मोरा॥

श्री हनुमान्‌जीका इतना उत्कृष्ट प्रेम भी महावीरत्वकी दशामें खो जाता है। लक्ष्मणको शक्ति-बाणसे आहत देखकर मनुष्यके स्वाँगके सदृश भगवान् श्रीरामके करुण क्रन्दनको न सहन करनेवाले श्री हनुमान्‌जीकी उक्ति ही प्रमाण है :

जौ हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चन्द्रमहि निचोरि चैल-ज्यों, आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
विबुध-बैद बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु-अनुग कहावौं॥
पटकौं मीच नीच मूषक-ज्यौं, सबहिको पापु बहावौं॥

भगवान्‌का करुण विलाप सुनकर श्री हनुमान्‌जीने कहा : 'प्रभो यदि आपकी आज्ञा हो तो चन्द्रमाको वस्त्रके समान निचोड़कर अमृत ले आऊँ और आपको प्रणाम करूँ।' यहाँ श्री हनुमान्‌जीको वाणीमें महावीरता तो दीख पड़ती है, किन्तु मर्यादाके विपरीत। अभी-अभी कुछ दिन पहले समुद्रके तटपर जब भगवान् रामने कपि-सम्मेलन किया, उसमें चन्द्रमाके कलंकपर कवियोंने अनेकविध कल्पनाएँ कीं। भगवान् रामके बोलेनके बाद मारुत-सुत हनुमान्‌जीने बतलाया : 'प्रभो चन्द्रमा, आपका दास है। आपकी साँवरी मूर्ति उसके हृदयमें निवास करती है,. इसीलिए उसमें कालिमाका आभास होता है।' एक जगह तो चन्द्रमाको भगवान्‌का दास बताया, तो दूसरी जगह महावीरत्वकी दशामें उसे वस्त्रकी तरह निचोड़ अमृत लानेकी बात कहो, यह मर्यादाके प्रतिकूल ही है। वहाँ प्रेमरूपी समुद्रकी उत्ताल तरंगें तट तोड़ना चाहती हैं। इस प्रसंगमें उपर्युक्त पद्यका भाव प्रेमाधिक्यसे अमर्यादित हो गया है। अतएव यह स्नेह सर्वथा उपादेय नहीं।

इस तरह श्री तुलसीदासने राम-सनेहियोंमें भरतको छोड़ अन्य किसीकी प्राथमिकता नहीं दी। भरतके समान तो भरत ही हो सकते हैं :

भरत सरिस को राम-सनेही। जग जप राम जप जेही।

श्रीरामके प्रति भरतके प्रेमकी अगाधता, त्यागकी पराकाष्ठा और संयम-नियमादिकी त्रिवेणी भारत ही नहीं, विश्वके जनमानसको आप्लावित करती रहेगी।



एकांकी : भैयादूजकी भेंट

भाई-बहन

श्री विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त

★

– १ –

(किवाड़ खटखटानेकी आवाज)

पद्मा०—कौन है ?

जोरावर सिंह—मैं हूँ, पद्मा !

पद्मा०—जोरावर भैया ? (किवाड़ खोलनेकी आवाज) इतनी राततक कहाँ रहे ?

जोरावर०—सन्ध्यातक जंगलमें लकड़ियाँ काटता रहा। वहाँसे आते-आते रात हो गयी।

पद्मा०—न जाने कबतक तुम्हें मजदूरी करनी पड़ेगी !

जोरावर०—जबतक हम गरीबीकी छायामें रहेंगे।

पद्मा०—काकाका कर्ज भी नहीं दिया जा सका। वे प्रतिदिन बिना नागा, दिनमें दो बार तकाजा करने पहुँच जाते हैं।

जोरावर०—दिनभर मजदूरी करनेसे जो कुछ मिलता है, उससे पेट भी नहीं भरता पद्मा ! उनके कर्जका बोझ कैसे उतारा जाय ?

पद्मा०—साहूकारको गरीबीसे कोई मतलब नहीं भैया। उसे तो सूदके साथ रुपये चाहिए। काका बिना कर्ज चुकाये हमें चैनसे नहीं रहने देंगे।

जोरावर०—अब तो हमारे पास कोई जायदाद भी नहीं बची, जिसे बेचकर कर्ज चुका दूँ।

पद्मा०—बचपनमें माँ-बाप हमें निराश्रय छोड़ गये। संसार हमारे लिए कारागार बन गया।

जोरावर०—एक गिलास पानी तो ला ! प्याससे गला सूख रहा है।

पद्मा०—कुछ खाओगे नहीं क्या ?

जोरावर०—(चौंककर) क्या खानेके लिए घरमें कुछ बचा है ?

पद्मा०—घरमें अन्नका एक दाना नहीं था, बहन सुशीलासे थोड़ा मकईका पिसान मांग लायी। चार रोटियाँ बनी हैं। बथुएका साग भी है। चलो, आंगनमें हाथ-मुँह धो लो।

(घरके बाहरसे आवाज 'काका'की)

जोरावर०—(भीतरसे) पद्मा ! देखो तो, कौन पुकार रहा है ?

पद्मा०—काका है। दूसरा हमें क्यों पुकारेगा ?

काका०—(बाहरसे) जोरावर आया या नहीं।

जोरावर०—(भीतरसे) उन्हींकी आवाज तो है।

काका०—(बाहरसे रोषभरे स्वरमें) अरे, घरमें कोई है या नहीं ? जवाब क्यों नहीं मिलता ?

पद्मा०—आयी काका !

काका०—(स्वरकी नकलकर) आयी काका ! हुँह, आवाज तो घीमें चुपड़ी हुई है, पर हृदय विषसे भरा है। 'मुँहमें राम बगलमें छुरी !'

पद्मा०—(पास जाकर) काका !

काका०—(दपटकर) मत कहा कर काका ! यह सम्बोधन सुनकर शरीरमें आग लग जाती है। दो वर्षोंसे दरवाजेपर दोनों समय नाक रगड़ जाता हूँ, पर कर्जमें एक पाई नहीं मिली।

जोरावर०—माफ करो काका ! हम स्वयं लज्जित हैं।

काका०—बेईमान कहींका। चुल्लूभर पानीमें डूब मर ! रुपये माँगते समय तुमने वादा किया था—वर्षके भीतर ही रुपये चुका दूँगा। आज कितने वर्ष बीत गये, याद कर।

पद्मा०—जहाँ इतने दिन सब्रसे काम लिया है, थोड़े दिन और धैर्य रखो। हम पाई-पाई चुका देंगे।

जोरावर०—(गिड़गिड़ाकर) हाँ काका ! थोड़े दिन और धीरजसे काम लो, मैं हाथ जोड़ता हूँ।

काका०—(दपटकर) बेईमान ! मुझे फुसलानेकी व्यर्थ कोशिश मत कर। मैं तेरी चालको भलीभाँति पहचानता हूँ। परन्तु याद रख ! मेरे सामने तेरी दाल न गलेगी। कल सूदसहित रुपये दे जा या जेल जानेके लिए तैयार रह ! यह मेरा आखिरी फैसला है।

— २ —

जोरावर०—(व्यग्र स्वरसे) पद्मा ! पद्मा ! काकाका हृदय हमारी प्रार्थनासे नहीं पसीज सका ! उन्होंने हमारे विरुद्ध नालिश कर दी। भूपालराजके सिपाही हमें कैद करने आ रहे हैं।

पद्मा०—हाय ! ये बुरे दिन भी देखने पड़े। भगवान् हमसे रूठ गये हैं, भैया ! (गला भर आता है)।

जोरावर०—पद्मा ! मेरी बहन ! दुखी मत हो ! आँखोंमें आँसू मत लाओ ! (भरे गलेसे) मेरा हृदय व्यथासे दो टूक हो जायगा ।

काका०—(कर्कश स्वरमें) सिपाहियो ! घरको घेर लो ! जोरावर भागने न पाये । अभी-अभी वह घरके भीतर घुसा है ।

जोरावर०—जोरावर भागेगा नहीं काका ! लो, मेरे दोनों हाथ तुम्हारे सामने हैं । इनमें हथकड़ियाँ डलवा दो । जरूरत समझो तो पावोंमें बेड़ियाँ भी ।

पद्मा०—काका ! काका ! भैयाको मुझसे अलग न कराओ । इन्हें छोड़ दो । हम तुम्हारे रुपये बहुत जल्द दे देंगे ।

काका०—अलग ही रह पद्मा ! जोरावरके पास मत जा । वह सरकारी कैदी है, समझ ले ।

जोरावर०—काकाका हृदय मोमका नहीं बना है पद्मा ! जा, घरके भीतर जा । आँखोंको आँसुओंसे न डुबा ।

पद्मा०—भैया ! भैया !

काका०—भैयाका जब तुझे इतना मोह है तो कर्ज चुकाकर अपने भैयाको छुड़ा लेना । केवल आँसू बहाने और 'भैया-भैया' चिल्लानेसे तुम्हारा भैया नहीं छूट सकेगा । सिपाहियो, ले चलो, बेईमानको ।

जोरावर०—पद्मा, विदा !

पद्मा०—भैया ! भैया !!

(रोनेकी आवाज)

– ३ –

सुशीला०—पद्मा ?

पद्मा०—सुशीला बहन ! भैयाको भूपाल-राजके सिपाही पकड़ ले गये । कर्ज चुकानेके कारण काकाने उन्हें कैद करा दिया ।

सुशीला०—मैं सब कुछ देख चुकी हूँ पद्मा ! अपने आँसुओंको पोंछकर साहससे काम ले । स्वार्थी संसारमें आँसुओंका कोई मूल्य नहीं होता है ।

पद्मा०—ठीक कहती हो सुशीला बहन ! अब मैं किसीसे दयाकी भीख नहीं माँगूँगी । आजसे ही मर्दाना वेश धारण करूँगी ।

सुशीला०—(चौंककर) मर्दाना वेश ! मर्दाना वेश क्यों धारण करोगी पद्मा ?

पद्मा०—सेनामें भरती होनेके लिए ।

सुशीला०—किसकी सेनामें ?

पद्मा०—ग्वालियरकी सेनामें । ग्वालियर-नरेश दौलतराव सिन्धिया और अंग्रेजोंमें युद्ध हो रहा है । साहूकारका कर्ज चुकाकर भैयाको छुड़ानेका यही एकमात्र उपाय है ।

सुशीला०—आखिर यह छद्मवेश कबतक धारण किये रहोगी ?

पद्मा०—जबतक काकाका कर्ज चुकाकर अपने भाईको छुड़ा नहीं लूँगी ।

सुशीला—पुरुषोंके बीच रहकर उनकी नजरोंसे छिपे रहना कठिन है, पद्मा !

पद्मा०—कोई मुझे पहचान न सके, इसके लिए सावधान रहूँगी । अपना नाम 'पद्मसिंह' बतलाऊँगी ।

सुशीला०—तुम्हारा भ्रातृ-प्रेम प्रशंसनीय है पद्मा ! तुम जैसी नारियोंके कारण भारतवर्षका मस्तक सदैव ऊँचा रहेगा ।

पद्मा०—मुझे आशीर्वाद दो बहन, कि मैं अपने भाईको छुड़ानेमें सफलता प्राप्त कर सकूँ ।

सुशीला०—पद्मा ! तुम्हारी जैसी उदार, त्यागमयी नारीकी सहायता स्वयं सुदर्शन-चक्रधारी भगवान् करेंगे ।

– ४ –

(युद्धकी आवाज ।'''आवाज ऊपर उठकर मन्द पड़ जाती है ।)

सेनापति०—मैं दुश्मनोंसे घिर गया था । जख्मी होनेके कारण हाथसे हथियार छूट गया । ऐसी नाजुक हालतमें स्वयं चक्र-सुदर्शनधारीकी तरह मेरी रक्षा करनेवाले ! तुम्हारा शुभ नाम ?

पद्मा०—मुझे लोग 'पद्मसिंह' कहते हैं सेनापतिजी !

सेनापति०—पद्मसिंह ! तुम्हारे हृदयकी तरह तुम्हारा नाम भी सुन्दर है । मैं सोच रहा था, मृत्यु मेरे आलिङ्गनके लिए हाथ बढ़ना ही चाहती है । इसी समय बिजलीकी तरह तुम्हारी तलवार चमक उठी । तुम शत्रुदलको चीरते हुए मुझे उनके घेरेसे बाहर निकाल लाये । मैं तुम्हारे उपकारको जीवनभर नहीं भूल सकूँगा ।

पद्मा०—मैं तो आपकी सेनाका एक साधारण सिपाही हूँ । मेरा काम है, शत्रुओंको मौतके घाट उतारना और अपने पक्षकी रक्षा करना । मेरी प्रशंसामें अब और कुछ कहकर मुझे लज्जित न करें !

सेनापति०—वीर पद्मसिंह ! निस्सन्देह तुम ग्वालियर-नरेशकी सेनाके गौरव हो ।

('युद्धकी आवाज' ऊपर उठकर मन्द पड़ जाती है ।)

सेनापति०—वह देखो ! शत्रु आगे बढ़ रहे हैं । हमें न देखकर हमारी सेनाके सिपाहियोंकी हिम्मत छूट रही है । बढ़ो, बढ़ो वीर ! आज अपनी वह शक्ति दिखाओ कि हम हारी बाजी जीत जायँ ।

('युद्धकी आवाज' ऊपर उठकर फिर मन्द पड़ जाती है ।)

सेनापति०—बढ़ो, बढ़ो, मेरे बहादुर सिपाहियो ! आगे बढ़ो । आजके ही दिनके लिए क्षत्राणी माताएँ अपने बच्चोंको दूध पिलाती हैं । माताके दूधको न लजाओ ।

···वह देखो, वह देखो ! वीर पद्मसिंह कालकी तरह दुश्मनोंपर टूट पड़ा है। तुम भी उस बहादुरकी तरह दुश्मनोंको मौतके मुँहमें पहुँचाओ।

···शाबाश ! शाबाश ! मेरे बहादुर दोस्त पद्मसिंह, शाबाश !

एक सिपाही०—सेनापतिजी ! आप जिसे पद्मसिंह समझ रहे हैं, वह पुरुष नहीं 'नारी' है।

सेनापति०—(चौंककर) नारी ? क्या पद्मसिंहके वेशमें साक्षात् माँ दुर्गा सहायता कर रही हैं ?

सिपाही०—सेनापतिजी ! कितने ही लोगोंका सन्देह है कि वह 'नारी' है। उसे वस्त्र बदलते किसीने नहीं देखा।

सेनापति०—वह देखो, पद्मसिंह विजय-पताका फहराता हुआ इधर ही आ रहा है। मैं सन्देह मिटाये देता हूँ।

(घोड़ेकी टापकी आवाज)

शाबाश ! पद्मसिंह, तुम्हारी वीरता देखकर मैं परम आनन्दित हुआ।

पद्मा०—वीरोंको अपनी शक्तिकी परीक्षा करनेका अवसर रण-स्थलमें ही मिलता है, सेनापतिजी !

सेनापति०—शाबाश मेरे वीर सैनिक ! इससे पहले कि मैं तुमसे कोई प्रश्न करूँ, यह कह देना चाहता हूँ कि तुम झूठ बोलकर सत्यपर परदा डालनेका यत्न मत करना।

पद्मा०—सेनापतिजीके सामने मैंने कब झूठका आश्रय लिया है, जिससे उन्हें सन्देह करनेका अवसर मिला ?

सेनापति०—पद्मसिंह ! मुझे तुमपर विश्वास है। तुमने युद्धमें हमारे प्राण बचाये, इसे भी मैं भूल नहीं गया। परन्तु····

पद्मा०—परन्तु क्या सेनापतिजी ?

सेनापति०—कितने लोग तुमपर सन्देह करते हैं।

पद्मा०—सन्देह ! किस बातका सन्देह सेनापतिजी ? क्या लोग मुझे शत्रुका गुप्तचर कहते हैं ?

सेनापति०—नहीं पद्मसिंह ! यदि इस बातका सन्देह रहता तो मैं सन्देह करनेवालोंकी शंकाका समाधान कर देता। परन्तु उन्हें तो किसी दूसरी बातका सन्देह है।

पद्मा०—वह क्या ?

सेनापति०—वह यह कि तुम मर्द नहीं, औरत हो।

पद्मा०—(चौंककर) औरत !

सेनापति०—हाँ, सन्देह करनेवालोंका कहना है किसीने तुम्हें स्नान करते या वस्त्र बदलते नहीं देखा।

पद्मा०—(घबड़ाकर) सेनापतिजी !

सेनापति०—बस, मेरा सन्देह भी दूर हो गया। तुम्हारे चेहरेपर घबराहटकी निशानी, तुम्हारा नजर नीचीकर बातें करना इस बातका प्रमाण है कि तुम 'मर्द' नहीं 'औरत' हो। क्या मैं तुम्हें पद्मसिंहके बदले 'पद्मादेवी'के नामसे पुकार सकता हूँ ?

पद्मा०—(गिड़गिड़ाकर) मुझे माफ़ कर दें सेनापतिजी !

सेनापति०—क्यों ? तुमने कौन-सा अपराध किया है ?

पद्मा०—मेरा नाम पद्मसिंह नहीं, पद्मा है।

सेनापति०—घबड़ाओ नहीं पद्मादेवी। हाँ, यह बतलाओ, किसलिए तुमने छद्मवेश धारण किया ?

पद्मा०—अपने भाई जोरावरसिंहको कैदसे छुड़ानेके लिए।

सेनापति०—तुम्हारा भाई कैदमें है ? किसकी कैदमें ?

पद्मा०—भूपालराजके कैदखानेमें।

सेनापति०—उसने कौन-सा अपराध किया था ?

पद्मा०—साहूकारका कर्ज चुकानेमें वे असमर्थ थे।

सेनापति०—पद्मा ! तुमने अपने त्यागसे भारतीय नारियोंका मुख उज्ज्वल कर दिया : तुम आदर्श बहन हो। मैं ग्वालियर-नरेशसे कहूँगा। मुझे विश्वास है, वे तुम्हारे भाईको शीघ्र कैदसे मुक्त करा देंगे।

पद्मा०—मैं आपका अहसान भूल न सकूँगी, सेनापतिजी !

– ५ –

सेनापति—पद्मा ! पद्मा !

पद्मा०—कौन ? सेनापतिजी ! महाराजने आपकी प्रार्थना स्वीकार कर ली ?

सेनापति०—हाँ, उन्होंने भूपाल-नरेशको तुरत ही पत्र लिख दिया।

पद्मा०—मेरे भैया कब आयेंगे ? उनकी कोई खबर मिली ?

सेनापति०—हाँ, वह स्वस्थ है और तुमसे मिलनेके लिए आतुर भी।

पद्मा०—उनसे कब भेंट होगी ?

सेनापति०—आज ही ! भैयादूजके शुभ-दिन !

पद्मा०—वे कहाँ हैं ?

सेनापति०—दरवाजेके बाहर। (स्वाभाविक स्वरको उच्च करके) भाई जोरावर सिंह ! इधर आइये तो।

जोरावर सिंह—अभी आया सेनापतिजी !····कहिये, क्या हुक्म है ?

सेनापति०—पहचानिये तो, क्या यह आपकी बहन है ?

पद्मा०—(हर्षावेशमें) भैया ! मेरे भैया !

जोरावर सिंह०—पद्मा ! मेरी बहन !

[आकाशवाणी : पटनाके सौजन्यसे]

तुम्बी

★

श्री रामेश्वर दयाल दूबे

पांडव चले तीर्थ-यात्रा पर
अपने पापोंको धोने।
कहा कृष्ण ने—"चल न सकूँगा
पुण्य कर्म मुझको बोने॥

सेवा-तीर्थ यहाँ पद-पद पर
उसमें ही मन रमता है।
मुझे तोष, हित, साधूँ जनका
जितनी अपनी क्षमता है॥

जाते हो, तो इस तुम्बी को
अपने साथ लिये जाना।
जहाँ तीर्थ में स्वयं नहाना,
इसको भी नहला लाना॥

तीर्थ-तीर्थ में पहुँचे पांडव
नदी-नदी में स्नान किया।
मन्दिर - मन्दिर में वे पहुँचे
दर्शनका शुभ लाभ लिया॥

जो सौंपा था काम कृष्णने
किया तीर्थ में सुख पाया।
पावन जलमें स्वयं नहाया
तुम्बीको भी नहलाया॥

जब लौटे, भगवान कृष्ण ने
तुम्बीको पहले काटा।
चूर्ण बना फिर बड़े प्रेम से
उसका ही प्रसाद बाँटा॥

भीम हँस पड़े—'यह क्या भगवान!
मुँह कड़वा हो जावेगा।
थू-थू करते सभी फिरेंगे
तभी मजा क्या आवेगा?'

कहा कृष्ण ने—'तीर्थ नहाकर
पावनता सबने पाई।
कड़ुवाहट क्या बनी रही ही
तीर्थ नहा यह भी आई?'

प्रश्न सरल था, किन्तु किसीसे
देते नहीं बना उत्तर।
धर्मराज ही ने मुँह खोला
वाणी में श्रद्धा भरकर—

'धन्य धन्य प्रभु! समझ गये हम
किस ढँगसे उपदेश दिया।
बाहरके उपचार व्यर्थ हैं
यदि न शुद्ध कर लिया हिया॥

कर सत्-कर्म मनुज निज जीवन
धन्य स्वयं हो सकता है।
जनताकी सेवा करके नर
'नारायण' बन सकता है॥'

●



दीपावलीका अभिनन्दन

दीपावलीके पावन और सुमधुर उपलक्ष्यमें हम अपने सभी कृपालु पाठकों, लेखकों, अभिभावकों एवं विज्ञापनदाताओंको सश्रद्ध-सस्नेह हार्दिक बधाई देते और मङ्गलमय व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रसे विनीत प्रार्थना करते हैं कि यह महापर्व विश्वके लिए मंगलमय बने। यों तो उत्सव और पर्व प्रमोदके स्रोत हुआ ही करते हैं। उनमें भी दीपावली सिरमौर है। इसकी सविशेष महत्ता इसी अंकमें अन्यत्र एक विद्वान्ने विस्तारसे प्रकट कर दी है। प्रकाशके इस पावन पर्वपर हम सभी मानव अपने-अपने अन्तरका अन्धतमस् मिटाकर विश्वकल्याणका आलोक प्रकाशित करें। कारण यह अहङ्कारपर विनयकी, अधर्मपर धर्मकी और तमस्पर प्रकाशकी विजयका स्मारक महोत्सव है और इसी तरह हम इसकी अगवानी कर सकते हैं।

किन्तु यह कहते समय अपने परिसरवर्ती विश्वकी गतिविधियाँ देखते हृदय दबता जा रहा है। अपने ही देशकी बात देखें, तो २३ वर्षोंसे भौगोलिक स्वतन्त्रता पाकर भी हम भारतवासी आर्थिक-बौद्धिक दासतामें परमुखापेक्षी और परतन्त्र ही बने हुए हैं, यह बड़े कष्टके साथ कहना पड़ता है। उसीके अभावमें स्वतन्त्रताका सुख जनसाधारण, विशेषकर मध्यमवर्गीय भोग नहीं पा रहा है। यही नहीं, दैनिक निर्वाह, सुरक्षा और सौमनस्यका जितना लाभ दासता-युगमें वह पाता रहा, उतना भी आज स्वतन्त्रताके कालमें नहीं पा रहा है, यह कटु-सत्य है। इसका एकमात्र कारण हमने अपनी नीति, राजनीति नहीं अपनायी। परायोंके ही लोकतन्त्र, समाजवाद, साम्यवादकी मृग-मरीचिकामें भटक रहे हैं। जगन्नाटकके सूत्रधार भगवान् वासुदेवने जीवनमें प्रयोग कर हमारे सामने किसी भी अंशमें कम या अपूर्ण नीति और राजनीति प्रस्तुत नहीं की है। आवश्यकता है, हम अपनी आँखें परायोंसे कुछ देर मोड़ अपनी ओर लगायें। दीवाली भारतीयोंको यह प्रकाश दे, तो वह बहुत बड़ी इस वर्षकी उपलब्धि होगी।

अपने बाद अपने पड़ोसीपर दृष्टि जाना स्वाभाविक है। 'सौ गोती, एक पड़ोसी' कहावत गँवार भी जानता है। फिर हमारा यह पड़ोसी हमारा अविभाज्य अंग रहा है, जिसे साम्प्रदायिकता-पिशाचिनीसे अभिभूत राजनीतिने कृत्रिम रूपसे विभक्त कर दिया। हम उसीकी ओर दृष्टि रखकर मातृ-भूमिको 'सुजलां सुफलाम्' कहकर प्रणाम करते आ रहे हैं। माताके उस वास्तविक स्वरूपका निर्मम विशसन होता देख स्वतन्त्र राष्ट्रके एक वीर सपूत वंगबन्धु मुजीबकी चेतना उत्स्फूर्त हो उठी और अपनी मातृभूमिके लाडले वीर साथियोंको ले वे गत छह माससे

यमराजको भी लजानेवाले याहियाके सैनिक-शासनसे जो प्राणपणसे मोर्चा ले रहे हैं, वह राष्ट्रोंके स्वातन्त्र्येतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कनीय तथा बेजोड़ रहेगा, ठीक उसी तरह जिस तरह स्वातन्त्र्येच्छु राष्ट्रोंके दमनके इतिहासमें काजलसे भी काले अक्षरोंसे लिखा जानेवाला याहिया-शासनका दमन ! विश्व-शान्तिके ठेकेदार कुछ राष्ट्र तो मौखिक सहानुभूति मात्र दिखलाते हैं तो कुछ लज्जाको भी ताकपर रखकर इस अन्यायको प्रश्रय दे रहे हैं । मात्र भारत करीब १ लाख शरणार्थियोंके लालन-पालनमें अपना सर्वस्व बहाता जा रहा है । फिर भी वह इस अन्यायके सक्रिय निवारणके कदम 'स्वतन्त्र बाँगला-देशकी मान्यता'के लिए अन्य देशों द्वारा पहल करनेकी ही बाट जोह रहा है ! हम नन्दनन्दनसे यहीं मनाते हैं कि वह हमारे राष्ट्रनायकोंके हृदयमें अपना यह उपदेश कि 'क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप' उतार दे, जिससे हम आगामी दीपावलीके अवसरपर अपने सहकर्मी, सहधर्मी 'स्वतन्त्र बाँगला-देश'का स्वागत करनेका सुअवसर पा सकें । ●

ज्योतिकी सामूहिक उपासना और शुभकामना

वेदवाणी कहती है : 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'—'मुझे अन्धकारसे प्रकाशमें पहुँचाओ ।' सत्से असत्की ओर, मृत्युसे अमृतकी ओर तमसे प्रकाशकी ओर जानेकी विवेकी जीवकी चिरंतन अभिलाषा है । ऐसी अभिलाषा इसलिए कि यह हमारा स्वरूप है । हम सत् हैं, अमृत हैं और हैं प्रकाशमय । अनादि-अविद्यावश जीव अपनेको असत्, मृत्यु और तमके कठघरेमें बन्द पाता है । यह बन्धन उसका स्वरूप नहीं, अज्ञान है । इससे ऊपर उठनेकी अन्तःप्रेरणा उसे यदा-कदा स्वतः प्राप्त होती है; अपनी वास्तविकता ही कभी-कभी प्रबल अभिलाषा बनकर जीवनमें उतर आती है । धीरे-धीरे वह इतनी प्रबल हो उठती है कि सत्यका अनुभव करा छोड़ती है । दीपावलीका पावन पर्व सामूहिक रूपसे हम सबकी उसी चिरन्तन अभिलाषाको साकार कर देता है । हम सब अन्धकारके अभेद्य दुर्गका भेदनकर जगमगाती दीपमालाओंसे अमाको रमाकी लीलास्थली बना देनेका सामूहिक प्रयास करते हैं । यह हमारी ज्योतिकी सामुदायिक उपासना है । कुछ ही क्षणोंके लिए सही, हम अमा (तम, दीनता, दरिद्रता) को दूर भगा देते हैं और प्रत्येक नगर, ग्राम, मार्ग और वीथीको ज्योतिर्मयी रमाके रम्य आलोकसे भर देते हैं । भगवान् करें, हमारा यह प्रयास चिर-सफलताके रूपमें परिणत हो जाय और देश तथा समाजसे दरिद्रताको सदाके लिए मिटाकर हम समष्टि रूपसे ज्ञान और ऐश्वर्यकी समृद्धिसे सम्पन्न हो जायें ।

दीपावलीके इस पुण्यपर्वपर हम 'श्रीकृष्ण-सन्देश'की ओरसे सभी पाठक-पाठिकाओं, ग्राहकों तथा प्रेमी सुहृदोंके लिए अपनी हार्दिक शुभाशंसा प्रेषित करते हैं । सब लोग ज्ञानालोकसे परिपूर्ण, सुखी समृद्धिमान् एवं सफल-मनोरथ हों ।

—सम्पादक

नीतिवचनामृत

(माता की सेवा का महत्त्व)

वृथा स्नानं वृथा तीर्थं वृथा जप्तं वृथा हुतम् ।
स जीवति वृथा लोके यस्य माता सुदुःखिता ॥

स्नान वृथा तीरथ वृथा, बृथा होम जप जोग ।
दुःख पावै जिनकी जननि, जियत वृथा वे लोग ॥

यो रक्षेत् सततं भक्त्या मातरं मातृवत्सलः ।
तस्येहानुष्ठितं सर्वं फलं चामुत्र चेह हि ॥

मातृबछल जो भगति सों राखत मातु अशोक ।
सफल सुकृत वाको सकल इह लोकहु परलोक ॥

मातुश्च वचनं भक्त्या पालितं यैर्नरोत्तमैः ।
ते मान्यास्ते नमस्कार्या इह लोके परत्र च ॥

जे नरवर कर भगति सों मातु वचन प्रतिपाल ।
पूजनीय नमनीय ते, दुहूँ लोक सब काल ॥



सुक्ति-सुधा

भगवान् से प्रार्थना

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥
(श्रीमद्भाग० १०।१०।८)

वाणी मेरी आपके गुणानुवादमें हो लगी
लीलाकथा - श्रवणका श्रवण सगा रहे,
हाथ नाथ ! आपकी ही सेवा में निरत होंवे
चित्त नित्य सुधमें पदाब्जकी पगा रहे।
मस्तक हमारा सदा आपके निवासभूत-
जग के प्रणाम के ही रंगमें रँगा रहे,
तन-रूप आपके अनूप संत जन के हीं
दर्शमें सहर्ष युग लोचन लगा रहे ॥

श्रीकृष्ण जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, ढुण्ढिराज,
वाराणसी—१ में मुद्रित एवं प्रकाशित